प्रथम संस्करण : १९७०

प्रकाशक : किताब महल, इलाहाबाद।
मुद्रक : ईगल ऑफसेट प्रिन्टर्स, १५ थार्नहिल रोड, इलाहाबाद।

आशीर्वचन

जैसे-जैसे मनुष्य को स्पष्ट हो रहा है कि विज्ञान और हिंसा का सह-अस्तित्व हो ही नहीं सकता है, हिंसा के द्वारा अणु-शक्ति के इस युग में किसी समस्या के समाधान के प्रयास का मतलब है प्राणिमात्र का सर्वनाश, वैसे-वैसे लोगों के मन में हिंसा के विकल्प की खोज के प्रति तीव्रता उत्पन्न हो रही है। *फलस्वरूप आज गांधीजी के विचारों का अध्ययन विश्व के विचारकों का एक* मुख्य विषय बन गया है।

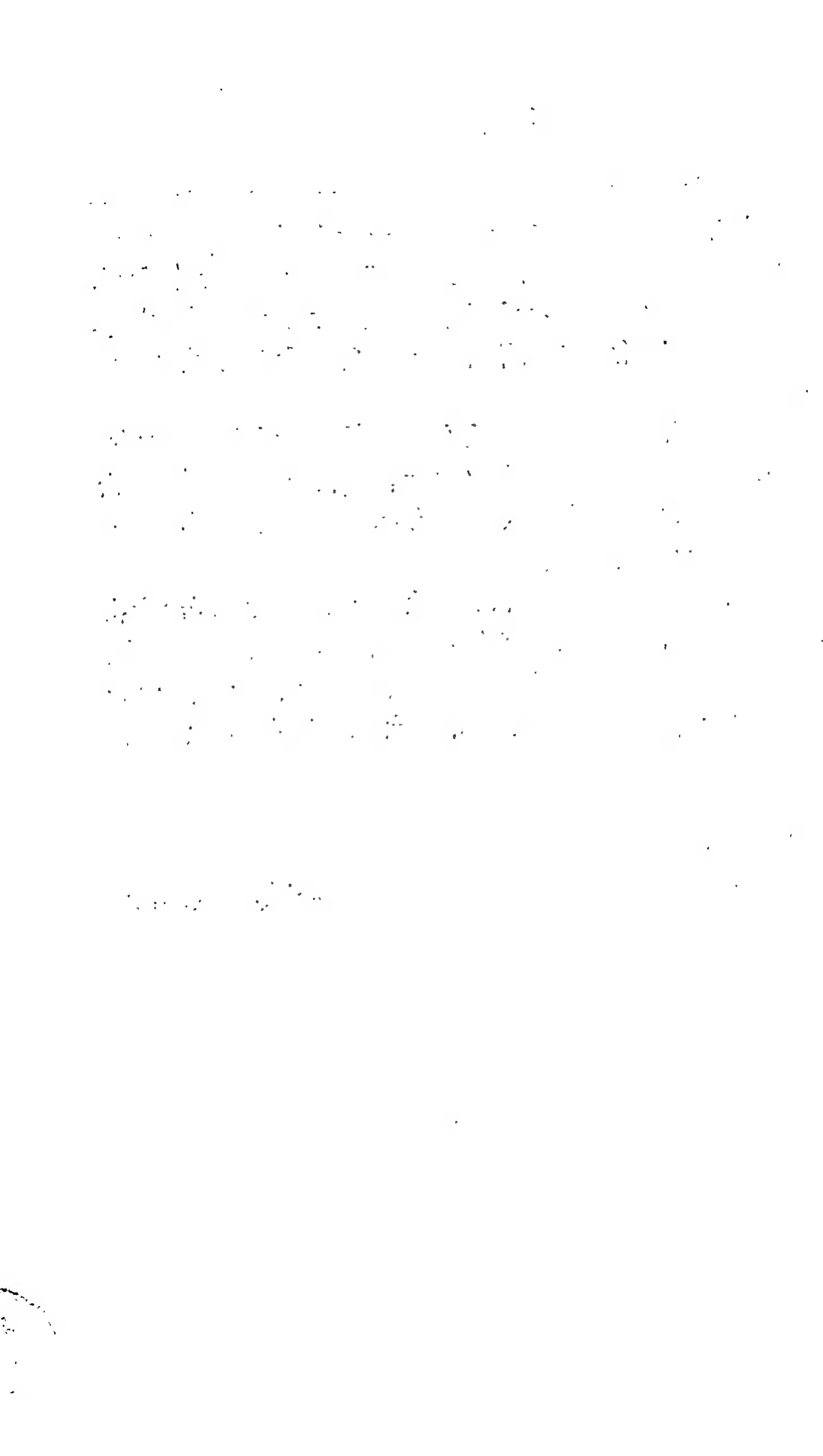
लेकिन गांधीजी ने अपने विचार को किसी दार्शनिक दायरे के अन्दर बांधा नहीं है और न उन्होंने संसार के लिये कोई शास्त्र गढ़ा है। जीवन पर्यन्त अपने चिंतन और प्रयोग के सिलसिले में उन्होंने जो कुछ कहा है उसी में से समाज-शास्त्रियों को मार्ग खोजना होगा।

इस दिशा में तरुण मित्र भाई अवध प्रसाद ने जो श्रम किया है, उससे 'खोजने वालों' को काफी मार्ग-दर्शन मिलेगा, ऐसी आशा है। मुझे विश्वास है कि इन्होंने 'गांधीजी और ग्रामोद्योग' का जो अध्ययन किया है और अपने अध्ययन का जो निचोड़ इस पुस्तक में व्यक्त किया है, उससे गांधीजी को समझने में सहूलियत होगी।

सर्व सेवा सङ्घ

वाराणसी

—धीरेन्द्र मजूमदार



भूमिका

प्रस्तुत पुस्तक में गांधीजी द्वारा ग्रामोद्योग और औद्योगीकरण पर व्यक्त किये गये विचारों का अपने ढंग से अध्ययन किया गया है। इसे विचार के क्रम की दृष्टि से दो भागों में बांटा जा सकता है। पहला भाग, जिसमें ग्रामोद्योग एवं औद्योगीकरण पर गांधीजी के स्वयं व्यक्त विचारों का अध्ययन है और दूसरे में गांधीजी के बाद ग्रामोद्योग पर व्यक्त विचारों एवं कार्यों का अध्ययन है। एक अध्याय में भारतीय नियोजन में छोटे उद्योगों के स्थान पर भी विचार किया गया है। विचार के विकास की दृष्टि से, औद्योगीकरण पर गांधीजी के विचारों का क्रमिक विकास, तकनीक के सामाजिक प्रभाव, मध्यम प्रौद्योगिकी की विचारधारा, आदि अध्याय विशेष महत्व के हैं। अध्ययन में इस्तेमाल किये गये उद्धरणों को प्रामाणिक पुस्तकों, पत्र-पत्रिकाओं से ही लिया गया है।

पुस्तक में यह स्पष्ट करने का प्रयास किया गया है कि गांधीजी ने मशीन, औद्योगीकरण एवं पाश्चात्य सभ्यता पर अपने विचारों को किस ढङ्ग से क्रमशः विकसित किया और वे विचार आज कहां तक उपयोगी हैं और क्यों? मानव समाज के विकास-क्रम में गांधीजी द्वारा बतायी गयी जीवन-पद्धति का अपना एक महत्व है। उस महत्व को समझने के लिये जरूरी है कि उनके विचारों को उसी क्रम में समझा जाय जिस क्रम में उन्होंने जीवन पर्यन्त प्रयोगों द्वारा व्यक्त किया है। भारत का आर्थिक विकास किस ढङ्ग से हो, आर्थिक विकास में उद्योग—बड़े उद्योगों, छोटे उद्योगों—का क्या स्थान एवं स्वरूप हो, इस पर सामान्यतः गलतफहमी हो जाया करती है। अर्थशास्त्र के विद्वान् अक्सर गांधीजी के विचारों को समझने का प्रयास नहीं करते, और उनकी अन्ध आलोचना किया करते हैं। गांधीजी को दकियानूसी विचारक, पिछड़ी सभ्यता एवं संस्कृति का पोषक मानने वाले ऐसे तथाकथित विद्वान् अर्थशास्त्री उनकी विचारधारा को 'लंगोटी का अर्थशास्त्र' मानते हैं। परन्तु आज आवश्यकता इस बात की है कि गांधीजी के विचारों का अत्यन्त बारीकी से और वैज्ञानिक दृष्टिकोण के साथ अध्ययन किया जाय। इस छोटी-सी पुस्तक में इस दिशा में कुछ प्रयास किया गया है।

पुस्तक को शोध रूप में लिखने में प्रोफेसर श्री कृष्णनाथ शर्मा, काशी विद्यापीठ का भरपूर मार्ग-दर्शन मिला है, जिनके प्रति मैं बहुत आभारी हूँ।

अन्त में, मैं गांधीवादी विचारधारा के प्रखर चिंतक और क्रांतिकारी विचारक पूज्य श्री धीरेन्द्र मजूमदार के प्रति अपनी श्रद्धा व्यक्त करता हूँ, जिनके आशीर्वचन ने इस पुस्तक का महत्व बढ़ा दिया है, मेरा उत्साहवर्द्धन तो किया ही है। इसके प्रकाशन के लिए किताब महल का बहुत आभारी हूँ।

जयपुर
१०-६-६६

—अवध प्रसाद

विषय-सूची

पहला अध्याय

औद्योगीकरण पर गांधी जी के विचारों का क्रमिक विकास

गांधी-अर्थव्यवस्था में औद्योगीकरण का क्या स्वरूप हो, इस पर विचारकों में काफी अस्पष्टता रही है। कुछ लोग यहाँ तक मान लेते हैं कि गांधी जी अपनी अर्थव्यवस्था में मनुष्य को प्राचीन अविकसित व्यवस्था की ओर ले जाने के पक्षपाती थे। वे ऐसा मानते हैं कि गांधी जी औद्योगीकरण के पूर्ण विरोधी थे। परन्तु गांधी जी न तो विकसित तकनीक के विरोधी थे और न ही औद्योगीकरण के। 'मैं ऐसे हर एक आविष्कार का स्वागत करूँगा जिससे सब का लाभ सिद्ध होता है। लेकिन आविष्कार आविष्कार में फर्क है। मैं हजारों आदमियों को एक साथ ही मारने का समर्थन रखने वाली जहरीली गैसों का स्वागत तो नहीं कर सकता।'[1] आज के युग में औद्योगीकरण एक अपरिहार्य चीज हो गयी है। जब हमें युग के साथ चलना है तो किसी न किसी रूप में औद्योगीकरण को स्वीकार करना ही पड़ेगा। हाँ, इतना जरूर है कि प्रत्येक देश, काल एवं परिस्थिति में औद्योगीकरण का स्वरूप एक-सा नहीं हो सकता है। हम यह मानने को तैयार नहीं हैं कि जिस ढंग से पश्चिमी देशों में औद्योगीकरण हुआ है, उसी ढंग से भारत में भी हो। भारत की परिस्थिति, समस्यायें बिल्कुल भिन्न हैं, अतः यहाँ का औद्योगीकरण भी भिन्न ढंग का होगा; ऐसा गांधी जी स्पष्ट देखते थे। औद्योगीकरण में यंत्र का सर्वप्रमुख स्थान माना जाता है। अतः जब हम औद्योगीकरण का अध्ययन करते हैं तो यंत्र-संबन्धी विचार का अध्ययन आवश्यक हो जाता है। वैसे जब से औद्योगीकरण का विकास हुआ है तब से पश्चिम के विचारकों का ही दबदबा रहा है। आम तौर पर संसार के हर देश में पश्चिमी विचारधारा ही अपनाये जाने का प्रयास किया जाता है। औद्योगीकरण का जिस रूप में पश्चिम में विकास हुआ है और उसके परिणामस्वरूप जिस विचारधारा का विकास हुआ है उसे इसी

१. गांधी जी, हरिजन २२-९-३५ से उद्धृत, आर्थिक और औद्योगिक जीवन। सम्पादक ह्वी० वी० खेर। नव जीवन प्रकाशन, अहमदाबाद १९५९।

रूप में अन्य देशों में भी अपनाने का प्रयास किया जाता है। परन्तु गांधी जी की ऐसी मान्यता है कि भारत, या भारत जैसे अन्य देशों में औद्योगीकरण को उस रूप में नहीं स्वीकारा जा सकता है जैसा कि पश्चिमी राष्ट्रों में स्वीकार किया गया है।

गांधी जी के यंत्र-सम्बन्धी विचार पश्चिमी सभ्यता के साथ जुड़ी हुई विज्ञान और तकनीक की चुनौती के जवाब में आये। अंग्रेजी राज्य के साथ भारत में भी मशीनों का प्रभाव आया। ये प्रभाव मुख्य रूप से दो प्रकार के हैं: (१) बाह्य, (२) आंतरिक। एक तो भारत लीवरपूल और मैंचेस्टर की कपड़ा मिलों का बाजार बना और इससे भारत में भी अंग्रेजी राज्य में कल-कारखानों की शुरुआत हुई। खास तौर पर सूती वस्त्र-उद्योग और जूट-उद्योग के धन्धे में ब्रिटिश पूँजी और प्रबन्ध अधिकाधिक लगने लगा। गांधी जी ने इन मशीनों को हिन्दुस्तान की कारीगरी के खात्मे का और गरीबी का बड़ा कारण माना। 'हिन्द स्वराज्य' में १९०७ में लिखा है, 'मशीन की झपट लगने से ही हिन्दुस्तान पामाल हो गया है। मैंचेस्टर ने हमें जो नुकसान पहुँचाया, उसकी तो हद ही नहीं है। हिन्दुस्तान में जो कारीगरी खतम हो गयी, वह मैंचेस्टर का ही फल है।'[1] वह आगे लिखते हैं, 'मशीन योरप को उजाड़ने लगी है और वहाँ की हवा अब हिन्दुस्तान में चल रही है। यंत्र आज के सुधार (सभ्यता) की मुख्य निशानी है और वह महापाप है, ऐसा मैं तो देख सकता हूँ।'

गांधी जी का मशीन का यह जो विरोध है उसकी टीका हुई है। इसका जिक्र महादेव भाई देसाई ने 'हिन्दस्वराज्य' की नयी आवृत्ति की प्रस्तावना में किया है। वह इस प्रकार है, 'समालोचक इस विरोध को नामुनासिब और अकारण मानते हैं। श्री मिडल्टन मरी कहते हैं, 'गांधी जी अपने विचारों के जोश में यह भूल जाते हैं कि जो चरखा उन्हें बहुत प्यारा है वह भी एक यंत्र ही है और कुदरत की नहीं, एक इन्सान की बनायी अकुदरती कृत्रिम चीज है। उनके ऊसूल के मुताबिक तो उसका भी नाश करना होगा।' श्री बर्नस कहते हैं, 'यह तो बुनियादी विचार-दोष है, उसमें छिपी रीति से यह बात सूचित की गयी है कि जिस किसी चीज का बुरा उपयोग हो सकता है, उसे हमें नैतिक दृष्टि से हीन मानना चाहिए। लेकिन चरखा भी तो यंत्र ही है और नाक पर लगाया जाने वाला चश्मा भी तो आंख की मदद का यंत्र ही है, हल भी यंत्र है और पानी खींचने वाला साधारण यंत्र भी मनुष्य के हजारों वर्षों के लगातार कोशिश का आखिरी फल होगा।...किसी भी यंत्र का बुरा उपयोग होने की सम्भावना बनी रहती है। लेकिन अगर ऐसा हो तो उसमें

---

१. गांधी जी, हिन्दस्वराज्य, अनुवादक अमृतलाल ठक्कोरदास नाणावती, नवजीवन प्रकाशन मन्दिर : अहमदाबाद, १९५९, पृष्ठ ७७–७८।

रखी हुई नैतिक हीनता यंत्र की नहीं, बल्कि उसका उपयोग करने वाले मनुष्य की है ।"[1] इन आलोचकों पर श्री महादेव भाई की टिप्पणी है, 'मुझे इतना तो कबूल करना चाहिए कि गांधी जी ने, अपने विचारों के जोश में, यंत्र के बारे में अतिशय भाषा इस्तेमाल की है और आज अगर वे इस पुस्तक को फिर से दुहराने बैठें तो उस भाषा को वह खुद बदल देंगे । क्यों कि मुझे यह यकीन है कि मैंने ऊपर समालोचकों के जो कथन दिये हैं उनको गांधी जी स्वीकार करेंगे ।"[2]

श्री महादेव भाई की यह टिप्पणी युक्तियुक्त प्रतीत होती है और १९२४ में श्री रामचन्द्रन्, की दिल्ली में गांधी जी से हुई बातचीत से इसकी पुष्टि की जा सकती है । गांधी जी की राय में १९२१ में भी एक परिवर्तन स्पष्ट रूप से देखा जा सकता है । 'हिन्दस्वराज्य' के हिन्दी अनुवाद के लिए गांधी जी ने जो प्रस्तावना लिखी थी उसमें उन्होंने मिलों के बारे में लिखा है—'मिलों के सम्बन्ध में मेरे विचारों में इतना परिवर्तन हुआ है कि हिन्दुस्तान की आज की हालत में मैंचेस्टर के कपड़े के बजाय हिन्दुस्तान की मिलों को प्रोत्साहन देकर भी हमारी जरूरत का कपड़ा हमारे देश में ही पैदा कर लेना चाहिए ।'[3] गांधी जी यह भी मानते थे कि इन मिलों को बन्द करना मुश्किल बात है । इसकी पुष्टि पाठक-सम्पादक संवाद से होती है ।

पाठक—तब क्या मिलों को बन्द कर दिया जाय ?

सम्पादक—यह बात मुश्किल है । जो चीज स्थायी यानी कायम हो गयी है उसे निकालना मुश्किल है । इसीलिए काम ही शुरू न करना पहली बुद्धिमानी है ।[4] तो फिर लोग मशीनों का इस्तेमाल करना कैसे बन्द कर सकते हैं ? क्या सब लोग एक ही समय मशीन की चीजों को छोड़ सकते हैं ? इस प्रश्न पर गांधी जी की राय है, 'यह सारा काम सब लोग एक ही समय में करेंगे या एक ही समय में कुछ लोग यंत्र की सब चीजें छोड़ देंगे, यह सम्भव नहीं है । लेकिन अगर यह विचार सही होगा तो हम हमेशा शोध-खोज करते रहेंगे और हमेशा थोड़ी-थोड़ी चीजें छोड़ते जायेंगे । अगर हम ऐसा करेंगे तो दूसरे लोग भी ऐसा करेंगे । पहले

---

१. गांधी जी, हिन्द स्वराज्य, अनुवादक अमृतलाल ठक्कोरदास नाणावती, नवजीवन प्रकाशन मन्दिर, अहमदाबाद, १९५९, पृष्ठ १३-१४ ।

२. वही, १९५७, पृष्ठ १४ ।

३. गांधी जी, हिन्दस्वराज्य, परिशिष्ट, १९२१ । नवजीवन प्रकाशन, अहमदाबाद ।

४. हिन्द स्वराज्य, पृष्ठ ७८–७९ ।

तो यह विचार जड़ पकड़े यह जरूरी है। बाद में उसके मुताबिक काम होगा।'[१] इस तरह गांधी जी मशीन की बनी चीजों को सभी लोगों को एक समय में या एक ही समय में कुछ लोगों के लिए छोड़ना सम्भव नहीं मानते और इसके लिए लगातार शोध-प्रयत्न पर जोर देते हैं और इस प्रयत्न की शुरुआत विचार से मानते हैं। लेकिन एक बात जो वे इस संवाद के अंत में न भूलने के लिए कहते हैं वह यह है, 'लेकिन मूल बात न भूलियेगा। मन में यह तय कर लेना चाहिए कि यंत्र खराब चीज है। बाद में हम उसका धीरे-धीरे नाश करेंगे।'[२] इस बात पर जोर देने के लिए गांधी जी आगे लिखते हैं, 'यंत्र का गुण तो मुझे एक भी याद नहीं आता जब कि उसके अवगुणों से तो मैं पूरी किताब लिख सकता हूँ।'[३] इस पर पाठक जब पूछते हैं कि यह जाप लिखा हुआ यंत्र की मदद से छापा जायगा, उसी की मदद से बांटा जायगा, यह यंत्र का गुण है या अवगुण। तब सम्पादक के रूप में गांधी जी कहते हैं 'यह जहर थी, इसी जहर है, की मिसाल है। इसमें यंत्र का कोई गुण नहीं है।'[४]

इसमें सन्देह नहीं कि 'हिन्दस्वराज्य' (१९०९) में मशीन के बारे में गांधी जी की आलोचना अत्यधिक है। जैसा कि श्री महादेव भाई ने खुद स्वीकार किया है, 'गांधी जी ने अपने विचारों के जोश में यंत्रों के बारे में अगड़ भाषा इस्तेमाल की है और अगर आज वे इस पुस्तक को फिर से सुधारने बैठें तो इस भाषा को वे खुद बदल देंगे।'[५] और गांधी जी ने न सिर्फ इस भाषा को बल्कि मशीन के बारे में अपने विचारों को भी बदला है। इस परिवर्तन की सूचना की दृष्टि से १९२४ में श्री रामचन्द्रन् से दिल्ली में जो एक संवाद हुआ था, वह विचारणीय है। यह संवाद पूरा का पूरा उद्धृत किया जा रहा है।

'क्या आप तमाम यंत्रों के खिलाफ हैं?' श्री रामचन्द्रन् ने पूछा। गांधी जी ने सरल भाषा में कहा, 'वैसा मैं कैसे हो सकता हूँ। जब मैं जानता हूँ कि यह शरीर भी बहुत नाजुक यंत्र ही है। चरखा भी यंत्र ही है, छोटी दांत कुरेदनी भी यंत्र ही है। मेरा विरोध यंत्रों के लिए नहीं है, बल्कि यंत्रों के पीछे जो पागलपन चल रहा

---

१. हिन्द स्वराज्य, पृष्ठ ८०।
२. वही, पृष्ठ ८१।
३. वही, पृष्ठ ८१।
४. वही, पृष्ठ ८१।
५. श्री महादेव भाई देसाई, नयी आवृत्ति की प्रस्तावना, हिन्दस्वराज्य, पृष्ठ १४।

है, उसके लिए है।' यह पागलपन क्या है, इस पर गांधी जी प्रकाश डालते हैं, 'आज तो जिन्हें मेहनत बचाने वाला यंत्र कहते हैं' उनके पीछे लोग पागल हो गये हैं। उनसे मेहनत जरूर बचती है पर लाखों लोग बेकार होकर भूखों मरते हुए रास्तों पर भटकते हैं। समय व श्रम की बचत तो मैं भी चाहता हूँ। परन्तु वह किसी खास वर्ग की नहीं, बल्कि संपूर्ण मानव जाति की होनी चाहिए।'[1] समय और श्रम की बचत के बारे में इस दृष्टि से थोड़ा विचार जरूरी है। मशीनों के बारे में इस दृष्टि से उद्भव और विकास से ऐसा कहा जाता है कि श्रम का क्लेश घटा है और समय की बचत हुई है, लेकिन यह सब केवल पश्चिमी योरप, विशेषकर पूर्वी योरप, अमरीका और आस्ट्रेलिया में हुआ। बड़े पैमाने की टेकनालाजी ने गोरी जाति का श्रम व समय बचाया है, संपूर्ण मानव-जाति का नहीं। लगभग एक-तिहाई दुनिया में श्रम व समय की बचत की भारी कीमत एशिया, अफ्रीका और लैटिन अमरीका के दो-तिहाई दुनिया में बढ़ती हुई बेकारी, अनुत्पादकता और गरीबी की कीमत पर हुई है। वैसे ही भारत जैसे देश में किन्हीं औद्योगिक केन्द्रों में बड़ी मशीनों के इस्तेमाल से श्रम और समय की बचत हो सकती है, किन्तु इसके चलते करोड़ों की बेकारी का हल नहीं हो सकता है, बल्कि यह श्रम व समय बचाने वाली मशीनें बेकारों की तादाद में वृद्धि ही करती हैं। क्यों कि अगर एक मशीन बारह आदमी का काम करती है और आठ घण्टे का काम एक घण्टे में पूरा कर लेती है तो इस प्रकार वह ९६ आदमियों को बेकार करती है। अब अगर इन बड़ी मशीनों में १२ आदमियों को काम मिले तो ९६ में से ८४ आदमी बेकार रहे और यह बात सिर्फ एक मशीन नहीं, औद्योगीकरण के क्रम में जो तमाम मशीनें इस्तेमाल में आ रही हैं, उन सब पर लागू है।

वर्तमान अर्थव्यवस्था में मशीन का जो स्थान है, उसकी गांधी जी की आलोचना इस दृष्टि से भारत जैसे देश में १९६५ में भी उतनी ही महत्व की है जितनी कि १९२४ में थी, बल्कि १९४७ के बाद तो महत्व और भी बढ़ गया है क्योंकि अब भारत अपने आर्थिक, सामाजिक पुनर्निर्माण के लिए स्वतन्त्र है। फिर भी इस दृष्टि को भारत की पंचवर्षीय योजनाओं में नहीं ही अपनाया गया है। इसके विपरीत भारत के योजनाबद्ध आर्थिक विकास में पश्चिमी सभ्यता की दृष्टि और तकनीक अपनायी गयी है और औद्योगीकरण पर बिना सोचे-समझे जोर दिया गया है। यहाँ गांधी जी की दृष्टि से विरोध यंत्रों का नहीं है, न औद्योगीकरण

---

१. यंग इण्डिया, १९–२० नवम्बर १९२४, उद्धृत। हिन्दस्वराज्य, पृष्ठ १४।

का है, वल्कि यंत्रों के पीछे जो पागलपन चल रहा है, उसका है। क्योंकि गांधी जी ने साफ ही लिखा है, 'मेरा विरोध यंत्रों के लिए नहीं है वल्कि यंत्रों के पीछे जो पागलपन चल रहा है, उसके लिए है।' इस संदर्भ में श्री रामचन्द्रन् की गांधी जी से वातचीत से इस विचार की और अधिक पुष्टि होती है। श्री रामचन्द्रन् ने पूछा, 'तव तो, वापूजी, आपका झगड़ा यंत्रों के खिलाफ नहीं, वल्कि आज जो यंत्रों का बुरा उपयोग हो रहा है, उसके खिलाफ है।'

वहाँ "जरा भी आनाकानी किये विना कहता हूँ 'हाँ'। लेकिन मैं इतना जोड़ना चाहता हूँ कि सवसे पहले विज्ञान की खोज का लोभ नहीं रहना चाहिए। फिर मजदूरों से उनकी ताकत से ज्यादा काम नहीं लिया जाय और यंत्र रुकावट वनने के वजाय मददगार हो जायेंगे। मेरा उद्देश्य तमाम यंत्रों का नाश करने का नहीं है, वल्कि उनकी हद वाँधने का है।"[1]

इस तरह यह स्पष्ट है कि गांधीजी का प्रयोजन यंत्र मात्र का नाश नहीं है, वल्कि उनकी मर्यादा या सीमा तय करने का है।

श्री रामचन्द्रन् ने आगे पूछा, "इस दलील को आगे वढ़ायें तो उसका मतलव यह होता है कि भौतिक शक्ति से चलने वाले और भारी तमाम यंत्रों का नाश करना चाहिए।" गांधी जी ने मंजूर करते हुए कहा, "त्याग करना भी पड़े, लेकिन एक वात मैं साफ करना चाहूँगा। हम जो कुछ करें, उसमें मुख्य विचार इन्सान के भले का होना चाहिए। ऐसे यंत्र नहीं होने चाहिए जो काम करने के कारण आदमी के अंगों को 'जड़' और वेकार वना दें। इसलिए यंत्रों को मुझे परखना होगा। जैसे सिंगर की सिलाई मशीन का मैं स्वागत करूंगा।"[2]

श्री रामचन्द्रन् ने कहा, "लेकिन सिंगर की सीने की मशीन वनाने के लिए थोड़ा वड़ा कारखाना चाहिए और भौतिक शक्ति से चलने वाले यंत्रों का उपयोग करना ही पड़ेगा।" श्री रामचन्द्रन् के इस वात पर गांधीजी कहते हैं, "हाँ, लेकिन मैं इतना समाजवादी तो हूँ ही और इसलिए कहूँगा कि इन कारखानों का मालिक राष्ट्र हो या सरकार की ओर से ये कारखाने चलाये जायँ। उनका उत्पादन नफे के लिए नहीं वल्कि लोगों के लाभ के लिए हो।"[3] इस संवाद में जिस वात पर गांधी जी वार-वार जोर देते हैं, वह है लोगों की भलाई, आधुनिक अर्थशास्त्र की परिभाषा में 'कल्याण'। श्री रामचन्द्रन् के वाद के प्रश्न के उत्तर में गांधी जी ने

---

१. हिन्द स्वराज्य

२. वही।

३. उद्धृत, प्रो० डी० पी० मुकर्जी, डाइवर्सिटीज, पृष्ठ २११-१२।

यहाँ तक स्वीकार किया है कि जहाँ जरूरी हो, जैसे सिंगर सिलाई की मशीन बनाने के लिए बड़ा कारखाना भी कायम किया जा सकता है। लेकिन ऐसा बड़ा कारखाना राष्ट्र की तरफ से चलाया जाय।

इसी प्रश्नोत्तर के दौरान श्री रामचन्द्रन् ने आगे पूछा, "अगर आप सिंगर सिलाई मशीन और चरखे को अपवाद मानते हैं तो इन अपवादों का अन्त कहाँ है ?" इस पर गांधी जी का उत्तर है, "जहाँ ये यंत्र व्यक्ति के व्यक्तित्व को दबाने लगते हैं, वहीं इसका अंत है।" व्यावहारिक जीवन में आदर्श एवं व्यवहार का सवाल बराबर उठा करता है। श्री रामचन्द्रन् का अगला सवाल इस प्रकार है, "जब आप सिलाई मशीन को अपवाद मानेंगे तो फिर आपको सायकिल या मोटरकार वगैरह के लिए भी छूट देनी होगी।" गांधीजी का जवाब है, "नहीं। मैं ऐसा नहीं करूँगा। क्योंकि यह किसी मनुष्य की प्राथमिक आवश्यकता की पूर्त्ति नहीं करती है। आदर्श रूप में सभी मशीनों का निषेध करूँगा। जैसा कि शरीर का भी, क्योंकि यह शरीर भी मोक्ष के लिए साधक नहीं है। इस दृष्टि से मशीन को भी खारिज करूँगा। लेकिन शरीर की तरह मशीन भी रहेगी, क्योंकि वह अपरिहार्य है। जैसा कि मैंने बताया—शरीर एक बहुत सूक्ष्म यंत्र है। लेकिन जब वह आत्मा की सर्वोच्च उत्थान में बाधक हो तो इसे छोड़ना जरूरी हो जाता है।"

यहाँ मशीन के आदर्श और व्यवहार की एक अच्छी विवेचना हुई है। व्यवहार में शरीर की तरह मशीन भी अपरिहार्य है। लेकिन आदर्श स्थिति में मशीन को भी शरीर की तरह छोड़ना हो सकता है, क्योंकि यह मोक्ष के लिए या आत्मा की सर्वोच्च उड़ान के लिए साधक न हो कर बाधक है। इस पूरे संवाद के आधार पर यह कहा जा सकता है कि १९२४ में मशीन के बारे में गांधी जी की जो राय थी वह १९०९ में "हिन्द स्वराज्य" में मशीन के विरोध से भिन्न है। यह सही है कि इन १५ वर्षों में मशीन के बारे में जिस अनगढ़ भाषा का प्रयोग "हिन्द स्वराज्य" में हुआ है, वह भिन्न हो गयी है, किन्तु आदर्श रूप में अन्तर नहीं आया है। हिन्द स्वराज्य में भी गांधी जी मानते हैं कि मशीन को बिल्कुल खत्म करना संभव नहीं है, क्योंकि जो चीज कायम हो गयी है उसे निकालना मुश्किल है। हाँ, यह जरूर पसंद करेंगे कि इन मशीनों का स्वाभाविक अन्त हो।

औद्योगीकरण के संबन्ध में गांधी जी के विचार को स्पष्ट करने के लिए एक और प्रश्नोत्तर उद्धृत किया जा सकता है। गांधी जी से एक बार यह पूछा गया कि "क्या आप भारत का औद्योगीकरण नहीं चाहते हैं ?" गांधीजी ने जवाब दिया, "मैं जरूर चाहता हूँ, लेकिन अपने ढंग का औद्योगीकरण।......मैं

गाँवों का एक भिन्न प्रकार से औद्योगीकरण कर रहा हूँ।" लेकिन इसमें मशीन का स्थान क्या होगा ? इस प्रश्न पर गांधीजी ने जवाव दिया, "मैं विज्ञान के ऐसे हर आविष्कार की कद्र करता हूँ जो सब के भलाई के लिए है। ऐसी हर मशीन जो सबका भला करती है, उसकी एक जगह है। लेकिन ऐसी मशीन की जगह नहीं है जो कि मनुष्य के श्रम को वेकार वनाती और शक्ति को थोड़े से हाथों में केन्द्रित करती है। श्रम का एक सुसंस्कृत मानव-परिवार में विशिष्ट स्थान है।"

इस तरह गांधीजी मशीन-मात्र के विरोधी नहीं, वल्कि इसके अविवेकपूर्ण विस्तार के विरोधी हैं, मशीन के मोह के विरोधी हैं। श्रम वचाने वाले यंत्रों के वारे में गांधी जी कहते हैं, "इन दिनों जिसे श्रम वचाने वाली मशीनें कहा जाता है, उनका वड़ा जोर है। मैं श्रम और समय वचाना चाहता हूँ, लेकिन मनुष्य जाति के एक टुकड़े का नहीं, वल्कि सवका। मैं संपत्ति का केन्द्रीकरण चाहता हूँ लेकिन थोड़े से हाथों में नहीं, वल्कि सवके हाथों में।" लेकिन क्या सवके लिये श्रम एवं समय वचाना संभव है ? क्या सव के हाथों में धन एवं शक्ति का केन्द्रीकरण सम्भव है ? क्या विज्ञान व टेकनालाजी का ऐसा आविष्कार संभव है जो सवकी भलाई के लिए हो ? क्या ऐसा समाज संभव है जिसकी रचना एक पिरेमिड की तरह न हो जिसमें नीचे वाला ऊपर के वोझ से दवा हो और फिर ऐसी समाज-रचना में मशीन की क्या जगह हो ? क्या यह सव एक अव्यावहारिक आदर्श नहीं है ? १५ जुलाई १९४६ के "हरिजन" में इन आपत्तियों का जवाव देते हुए गांधीजी ने लिखा है, "मुझ पर यह व्यंग किया जा सकता है कि यह सव काल्पनिक है और विल्कुल विचारणीय नहीं है। लेकिन अगर यूक्लिड का विन्दु किसी भी मानवीय प्रयत्न द्वारा नहीं वनाया जा सकता और फिर भी उसका एक अविनाशी मूल्य है तो मनुष्य जाति के लिए मेरे इस चित्र का भी मूल्य है। भारत इस सच्ची तस्वीर को उतारने की कोशिश करे।......इस चित्र में ऐसी मशीन के लिए कोई जगह नहीं है जो मानवीय श्रम को वेकार वनाती और शक्ति को थोड़े से हाथों में केन्द्रित करती है। श्रम का एक सुसंस्कृत मानव परिवार में एक विशिष्ट स्थान है। हर ऐसी मशीन की, जो हर आदमी के लिए सहायक है, जगह है।"

इस प्रकार मशीनों के वारे में गांधी जी के विचारों के क्रमिक विकास की एक रूपरेखा है और इस रूपरेखा को सन्दर्भ में रखकर ही उनके विचारों की सच्चाई को समझा जा सकता है।

———

दूसरा अध्याय

औद्योगीकरण। बड़े एवं छोटे उद्योगों का स्थान

'औद्योगीकरण' शब्द का प्रचलन बहुत पुराना नहीं है। वैसे 'औद्योगीकरण' शब्द उद्योग से ही बना है जिसका अर्थ प्रयत्न करने से है। मनुष्य अपनी शक्ति, बुद्धि, ज्ञान का उपयोग प्रकृति से प्राप्त साधनों के साथ करता है और उससे उसे अनेक प्रकार के प्रतिफल प्राप्त होते हैं। प्रारम्भिक युग में उसका क्षेत्र सीमित था और यह मुख्यतः कृषि में ही निहित था। यह कृषि का युग काफी लंबा रहा और मनुष्य की सारी क्रियायें प्रकृति के सन्निकट रहीं। परन्तु बुद्धि एवं ज्ञान के विकास के साथ-साथ उसका क्षेत्र भी बढ़ा। कृषि एवं उद्योग दोनों के क्षेत्र का विस्तार हुआ है। दोनों के अर्थ भी बदले हैं। फिर इधर के दो शताब्दियों के वैज्ञानिक विकास ने सारा का सारा आर्थिक ढाँचा ही बदल दिया। अब कृषि एवं उद्योग बिलकुल दो क्षेत्र हो गये हैं। पश्चिमी सभ्यता के विकास ने ऐसा मानस बना दिया है कि लोग कृषि से अधिक महत्व उद्योग पर देने लगे हैं। आर्थिक दृष्टि से भी उद्योग, कृषि की अपेक्षा अधिक लाभप्रद सिद्ध हुआ है। अतः हम यहाँ साधारण भाषा में औद्योगीकरण का अर्थ पिछले तीन सौ वर्षों में हुए वैज्ञानिक एवं प्राविधिक विकास से ले सकते हैं। इन तीन सौ वर्षों में जो आर्थिक परिवर्तन हुए हैं, उन्होंने अपने पूर्व की हजारों या यों कहें लाखों वर्ष पुरानी व्यवस्था, मान्यतायें एवं ज्ञान को बिलकुल ही बदल दिया है। इसका प्रभाव विश्व के प्रत्येक क्षेत्र में पड़ा है। इस विकास ने समाज को तीव्र गत्यात्मक बना दिया है। सारी आर्थिक, सामाजिक एवं सांस्कृतिक क्रियाएँ नित्य परिवर्तनशील हो गयी हैं। इस परिवर्तन से जो नयी व्यवस्था अपने प्रारम्भिक काल में निकली वह पूंजीवादी है। पूंजीवाद के हाथों औद्योगीकरण फूला-फला एवं प्रसारित हुआ। इस औद्योगीकरण को विश्व के हर कोने में प्रसारित करने का मुख्य श्रेय पूंजीवादी व्यवस्था को दे सकते हैं। परन्तु यह प्रसार तमाम एशियाई, अफ्रीकी और लैटिन अमरीकी महाद्वीपों और कई देशों के लिए अभिशाप ही बना। उसके प्रसार से मानव जाति को महान् कष्ट सहना पड़ा। अतः हम पूंजीवाद एवं औद्योगीकरण को

मिले-जुले रूप में भी देख सकते हैं। साम्यवाद के मुख्य विचारक कार्ल मार्क्स ने इस पूंजीवाद के वारे में कहा है, "उत्पादन के तमाम औजारों में तेजी से हो रही उन्नति और यातायात की वेहिसाव सुविधाओं के कारण पूंजीपति वर्ग सभी देशों को, यहाँ तक कि वर्वर से वर्वर देश को भी सभ्यता की परिधि में खींच लाता है। उसके माल की सस्ती कीमतें ही वे भारी तोपें हैं जिनके जरिये वह तमाम दीवारों को ढहा देता है और विदेशियों के प्रति तीव्र और कट्टर घृणा रखने वाली वर्वर जातियों तक को आत्म-सर्मपण के लिए मजवूर कर देता है।" इनके प्रभावों का विवेचन करते हुए कार्ल-मार्क्स ने आगे लिखा है, "पूंजीपति वर्ग ने देहातों को शहरों के अधीन कर दिया है। जिस तरह पूंजीपति वर्ग ने देहातों को शहरों का आश्रित वना दिया है, उसी तरह उसने वर्वर और अर्धवर्वर देशों को सभ्य देशों का, खेतिहर देशों को औद्योगिक देशों का और पूरव को पश्चिम का आश्रित वना दिया है।"[१]

हालांकि इस औद्योगीकरण के विकास ने मानव-जाति को अपार कष्ट पहुँचाया है, पश्चिम के राष्ट्रों ने विश्व के अन्य क्षेत्रों का शोषण एवं दमन किया है, परन्तु इससे औद्योगीकरण का महत्व एवं उपयोगिता नहीं घटती। ज्ञान-विकास स्वयं में वुरी चीज नहीं, उसे वुरा तो मनुष्य के उपयोग का ढंग वना देता है। इस औद्योगीकरण का हम जैसा उपयोग करेंगे, वैसा प्रतिफल मिलेगा। अव तक औद्योगीकरण के विकास के मूल में अधिकतम लाभ का लक्ष्य रहा है, इस 'अधिकतम लाभ' के लिए जो कुछ किया जा सकता था, वह किया गया और उसका जो प्रतिफल हो सकता था, वह हुआ। परन्तु इतने पर भी हम औद्योगीकरण की उपेक्षा नहीं कर सकते हैं। इस औद्योगीकरण ने सम्पूर्ण आर्थिक ढाँचे को, आर्थिक नियम एवं सिद्धान्त को वदला है। इसका प्रभाव सार्वभौमिक रूप से पड़ा है। प्रसिद्ध दार्शनिक वर्ट्रैन्ड रसैल ने कहा है, "पश्चिमी आधुनिक सभ्यता के प्रसार को अव किसी भी तरह टाला नहीं जा सकता है।" इस विकास की प्रक्रिया में समाज जटिल आर्थिक नियमों में जकड़ा है। उत्पादन, वितरण एवं विनिमय के नये तौर-तरीके हमारे सामने आये हैं। यहाँ विचारणीय प्रश्न यह है कि इन आधुनिक नियमों का उपयोग हम किस प्रकार करें। इधर तीन सौ वर्षों में जो औद्योगिक विकास पश्चिम के देशों में हुआ है, उसका उपयोग हम किस प्रकार कर सकते हैं? क्या पश्चिमी सभ्यता, औद्योगीकरण की अक्षरशः नकल की

१. कार्ल मार्क्स एवं एंगेल्स, कम्युनिस्ट घोषणा-पत्र, पीपुल्स पब्लिशिंग हाउस लिमिटेड, नयी दिल्ली, चतुर्थ संस्करण, १९५५, पृष्ठ ४०।

जा सकती है और यह उपयोगी होगा ? जहाँ तक आज तक के किये गये प्रयासों का सवाल है, पश्चिमी सभ्यता एवं औद्योगिक विकास को विश्व के हर क्षेत्र में उसी रूप में लादने का असफल प्रयास किया जाता रहा है, जैसा कि वहाँ है। जो राष्ट्र गुलाम रहे हैं, या हैं, वहाँ तो पश्चिमी सभ्यता एवं औद्योगीकरण के विकास का मुख्य लक्ष्य शोषण एवं अपनी सभ्यता का विकास रहा है। इस सम्बन्ध में गांधी जी ने कहा है, "निस्सन्देह पश्चिमी देशों में उद्योगवाद और दूसरी प्रजाओं के शोषण की हद हो चुकी है। हकीकत यह है कि यह औद्योगिक सभ्यता इसलिए एक रोग है कि उसमें निरी बुराई ही बुराई है। मेरा तार या जहाज से कोई विरोध नहीं है। वे उद्योगवाद तथा इससे सम्बन्ध रखने वाले समस्त कारखानों और धन्धों के सहारे के बिना अगर टिक सकें तो रहें। वे स्वयं में लक्ष्य नहीं हैं।"[१] आगे गांधी जी ने कहा है, "बेशक यूरोपीय सभ्यता यूरोप वालों के लिए अच्छी है, लेकिन अगर हम उसकी नकल करेंगे तो वह भारत को बरबाद कर देगी।"[२]

इस प्रकार हम कह सकते हैं कि आज तक औद्योगीकरण को हर देश-काल में उसी रूप में थोपने का प्रयास किया गया, जो लाभप्रद नहीं है। आर्थिक नियम भी हर देश-काल में एक नहीं रहते। इसी को ध्यान में रखते हुए समय-समय पर विकासवाद, राष्ट्रवाद आदि विचारधारा का विकास हुआ। इस संबंध में प्रसिद्ध अर्थशास्त्री शूम्पिटर ने कहा है, "व्यावहारिक कींसवाद एक ऐसा पौधा है जो विदेशी भूमि में नहीं लगाया जा सकता है। यह वहाँ मुर्झा जाता है और मुर्झाने के पहले वातावरण को विशाल बना देता है।"[३] इस प्रकार हम कह सकते हैं कि पश्चिमी ढंग के औद्योगीकरण की अक्षरशः नकल करना कोई बुद्धिमानी नहीं समझा जायगा।

परन्तु इसका यह मतलब नहीं लगाया जा सकता है कि हम वर्तमान वैज्ञानिक विकास, औद्योगीकरण की प्रक्रिया से बच सकते हैं। वह तो हमारे पास आ ही गया है और उसकी देन को स्वीकार करना ही है। औद्योगीकरण हमारी अर्थ-व्यवस्था के अभिन्न अंग के रूप में है। पर यहाँ सवाल है, यह औद्योगीकरण किस

---

१. गांधी जी, ग्रामस्वराज्य, पृ० १२, नवजीवन प्रकाशन, अहमदाबाद, १९६३।

२. वही, पृष्ठ, १३।

३. कींस, उद्धृत, डा० रमाशंकर श्रीवास्तव, 'विकासमान राष्ट्र एवं कींस का रोजगार सिद्धांत, आर्थिकी, वर्ष १, खण्ड ४, १९६४, दिसंबर।

ढंग का हो ? इसमें बड़े उद्योग एवं छोटे उद्योग का क्या स्थान हो ? और अंततः उनका संगठन कैसा हो ?

जहाँ तक वड़े उद्योगों का सवाल है इसका पश्चिमी देशों में अपना एक विशेष महत्व है और इसी वड़े एवं केन्द्रित उद्योगों के वल पर पश्चिमी सभ्यता विकसित हुई है। या यों भी कह सकते हैं कि वड़े उद्योग एवं उसके केन्द्रित संगठन ने ही पश्चिमी ढाँचे को आगे वढ़ाया है। केन्द्रीकरण पश्चिमी पूंजीवाद के लिए वरदान के रूप में सामने आया। इस व्यवस्था के वारे में कार्ल मार्क्स ने लिखा है, 'आवादी को उसने एक जगह जमा कर दिया है, उत्पादन के साधनों का केन्द्रीकरण कर दिया है, और सम्पत्ति को चन्द लोगों के हाथों में केन्द्रित कर दिया है। इसका अवश्यंभावी परिणाम हुआ है: राजनीतिक केन्द्रीकरण।'[1] केन्द्रित, वड़े उद्योगों को आगे वढ़ाने में, शहरी सभ्यता को विकसित करने में पश्चिम के देश सफल हुए इसके भी कारण हैं। अन्य वातों के अलावा वड़े उद्योग के केन्द्रीकरण की सफलता के मुख्य कारण इस प्रकार गिनाये जा सकते हैं—

(१) आवादी का विखरा होना और कम होना। इस कारण वह शहरों को वसा सके और उद्योगों में श्रम-शक्ति को लगा सके।

(२) उपनिवेशों की खोज। इस कारण वे अपने पक्के माल की खपत कर सके और अपने राष्ट्र को धनी वना सके।

(३) उनकी अपनी परिस्थिति, समस्यायें एवं सुविधायें थीं जिस कारण शहरीकरण करने में सफल हो सके। आवादी कम होने के कारण प्रारम्भ से ही वे एक जगह पर वसे थे और वाद में अनुकूल परिस्थिति होने पर वे शहरीकरण करने में सफल हो सके। पश्चिमी सभ्यता एवं व्यवस्था को विकसित करने का मुख्य श्रेय उपनिवेशवाद को दिया जा सकता है जिसने कि उन्हें वाजार का और अतंतः शोषण करने का विशाल क्षेत्र दिया। परन्तु वड़े उद्योगों के विकास से जो समस्याएँ उत्पन्न होती हैं, वे वहाँ स्पष्ट नजर आती हैं। शहरीकरण उद्योगों के केन्द्रीकरण और सम्पूर्ण ग्रामीण जीवन को समाप्त करने पर वहाँ भी विकट समस्यायें सामने आयी हैं। इन समस्याओं से वे परेशान भी हैं। गांधी जी ने पश्चिमी सभ्यता के वारे में लिखा है, 'भौतिक सुख-सुविधाओं की निरन्तर खोज और उनकी वृद्धि यूरोपीय सभ्यता में घुसी हुई एक वुराई है, और मैं यह कहने का साहस करता हूँ कि यूरोप के लोग जिन सुख-सुविधाओं के गुलाम वनते जा रहे

---

१. कार्ल मार्क्स, वही, पृष्ठ ४०।

हैं, उनके बोझ के नीचे दब कर उन्हें नष्ट नहीं होना है तो उन्हें अपने आज के दृष्टिकोण में सुधार करना होगा।''[1]

परन्तु कुछ भी हो, वह सभ्यता उन्हीं के द्वारा विकसित है, हो सकता है उनके पास उसके समाधान के उपाय भी निकल आयें। परन्तु उनकी जो मूलभूत बुराइयाँ हैं, वे कायम रहने ही वाली हैं, क्योंकि वह तो उनकी जड़ में है। यहाँ सवाल बड़े केन्द्रित उद्योगों के स्थान एवं महत्व का है। पश्चिमी देशों में इनका अपना महत्व है, परन्तु आगे आने वाले वर्षों में यह कायम रहने वाला ही है, यह विचारणीय प्रश्न है। चूंकि वह केन्द्रित व्यवस्था वहाँ कायम हो चुकी है, अतः उसे समूल समाप्त करना शायद संभव न हो, फिर भी उनके सामने आज बाजार की विकट समस्या उपस्थित हो गयी है। खास तौर पर उस समय जब कि हर राष्ट्र कम से कम आयात और अधिक से अधिक निर्यात करने के प्रयास में है। जब हर देश अधिकतम स्वावलंबन की स्थिति प्राप्त करने के प्रयास में है तो पश्चिमी राष्ट्रों का आशातीत लाभ कायम रहने वाला नहीं है। हाँ, अविकसित राष्ट्रों के विकास की स्थिति को देखते हुए लाभ को वे कई वर्षों तक कायम रखने में सफल हो सकते हैं।

तो फिर यहाँ सवाल उठता है कि क्या बड़े एवं केन्द्रित उद्योग पूर्णतया समाप्त किये जा सकते हैं? हमें यहाँ स्वीकार करना चाहिए कि बड़े उद्योगों का स्थायी महत्व कायम हो गया है और वह महत्व अब समाप्त नहीं किया जा सकता है। यह महत्व कितना हो, यह एक प्रश्न है। यहाँ हम मुख्य रूप से भारत के संदर्भ में ही विचार करना चाहेंगे। भारत में अभी बड़े एवं केन्द्रित उद्योग कायम किये जा रहे हैं। यहाँ औद्योगीकरण की प्रक्रिया अब प्रारम्भ की गयी है। इसी भूमिका में हमें देखना है कि बड़े उद्योगों का क्या स्थान हो? भारत गाँव-प्रधान राष्ट्र है और जैसा कि गांधी जी ने कहा है, 'अगर गाँव नष्ट हो जायें तो हिन्दुस्तान नष्ट हो जायगा। वह हिन्दुस्तान ही नहीं रह जायगा। दुनिया में उसका अपना 'मिशन' ही समाप्त हो जायगा।'[2] आगे गांधी जी भारतीय परिस्थिति के संदर्भ में कहते हैं, ''सच तो यह है कि हमें गाँव वाला भारत और शहरों वाला भारत इन दोनों में से एक चुन लेना है। गाँव उतने ही पुराने हैं जितना

१. गांधी जी, ग्रामस्वराज्य, नवजीवन प्रकाशन मंदिर, अहमदाबाद, १९६३, पृष्ठ १५।

२. गांधी जी, ग्राम स्वराज्य, नवजीवन प्रकाशन मन्दिर, अहमदाबाद, पृष्ठ, ३०, १९६३।

कि भारत पुराना है। शहर को विदेशी आधिपत्य ने वनाया है। जव यह आधिपत्य मिट जायगा, तव शहरों को गाँव के मातहत होकर रहना पड़ेगा।''[1]

फिर भारत की अपनी परिस्थितियाँ एवं समस्यायें हैं जिस कारण हमें वड़े एवं केन्द्रित उद्योगों पर प्रतिवन्ध लगाना पड़ेगा। पहले तो जैसा कि हमने देखा है कि अव हर देश स्वावलम्वी होना चाहता है। अतः निर्यात द्वारा जो असीमित लाभ जव तक पूंजीवादी राष्ट्रों को प्राप्त होता रहा है, वह अव नहीं मिल सकता है। अव उत्पादन अपनी आवश्यताओं पर ही करना न्यायसंगत एवं लाभकर है। फिर भारत में श्रम-शक्ति के आधिक्य की समस्या है। गाँवों में अर्ध-वेकारी की समस्या भी विकट रूप में है। अतः काम देना भारत में आज सवसे वड़ी समस्या है। भारत में पूंजी की कमी के कारण वड़े उद्योग चलाने सम्भव भी नहीं। प्रति व्यक्ति पूंजी इतनी कम है कि वड़े उद्योगों का संचालन राष्ट्र के कुछ लोग ही कर सकते हैं।

अव सवाल उठाया जा सकता है कि क्या भारत के औद्योगीकरण में वड़े उद्योगों की क्या भूमिका हो सकती है? क्या भारतीय आर्थिक निर्माण से वड़े एवं केन्द्रित उद्योग को वहिष्कृत किया जा सकता है? उत्तर में यह कहा जा सकता है कि आज की परिस्थिति में इनसे मुक्ति संभव नहीं है। वे तो आ गये हैं और अगर अव उन्हें मिटाने का प्रयत्न करें तो हम पीछे रह जायेंगे। अव तो उनको साथ लेकर ही समस्या का समाधान निकालना होगा। इन वड़े पैमाने एवं केन्द्रित उद्योग के वारे में श्री जे० सी० कुमारप्पा कहते हैं, "केन्द्रित उद्योग तभी चलायें जायँ, जवकि उनके चलाने वालों का उद्देश्य मुनाफाखोरी या धन इकट्ठा करना न हो। केन्द्रित उद्योगों में धन केन्द्रित होने की जो स्वाभाविक प्रवृत्ति है, उसे ही रोकना चाहिए। ऐसा करने का तरीका क्या है? वे सव उद्योग सेवा की दृष्टि से ही चलाये जाने चाहिए। यदि हमें मोटरों की या जहाजों की जरूरत हो तो सरकार को ही उसे वनाना चाहिए।''[2] यहाँ हमें ध्यान रखना चाहिए कि केन्द्रित उद्योग में स्वभावतः धन इकट्ठा करने की प्रवृत्ति ठीक नहीं है। अतः इस प्रकार के उद्योग व्यक्तिगत रूप से तो नहीं ही चलाये जायँ, लेकिन सरकार भी इन्हें लाभ कमाने की दृष्टि से न चलाये। प्रायः देखा जाता कि सरकार भी वही काम करती है जिसमें उसे लाभ हो। इसका स्पष्ट उदाहरण भारत में शराव, नशा आदि के

१. गांधी जी, ग्राम स्वराज्य, नवजीवन प्रकाशन मन्दिर, अहमदावाद, पृष्ठ ३०१६६३।

२. जे० सी० कुमारप्पा, स्थायी समाज व्यवस्था, सर्व सेवा संघ प्रकाशन, रामघाट काशी, तीसरी वार १९६०, पृष्ठ १७६

सम्बन्ध में अपनाई गई नीति में हम देख सकते हैं। सरकार शराब-बन्दी इसलिए नहीं कर पाती कि उसे इससे धन का लाभ होता है। परन्तु यह किसी भी दृष्टि से न्यायसंगत नहीं कहा जा सकता। इसी प्रकार आज अपने को समाजवादी कहने वाली सरकार भी लाभ के मोह से नहीं बच पाती। गांधी जी मानते थे कि ये उद्योग सेवा की दृष्टि से सरकार को चलाने चाहिए। जहाँ तक संभव हो बड़े उद्योगों को सीमित करने का प्रयत्न करना चाहिए।

इस संबन्ध में श्री जे० सी० कुमारप्पा आगे कहते हैं, "केवल लाचारी के रूप में केन्द्रीय उद्योग रख सकते हैं। वे जहर के समान हैं। कभी-कभी जहर भी फायदेमन्द होते हैं, जैसे कि कुनेन। हकीम की देखभाल में थोड़ी-थोड़ी मात्रा में इस्तेमाल करने से कुनेन फायदा करती है। उसी प्रकार यदि आप केन्द्रीय उद्योग, जो कि राष्ट्र के लिए जहर के समान हैं, रखना चाहते हैं तो उन पर आप जहर का निदर्शक लाल लेवल लगा रखिये और हकीम के आदेशानुसार वक्त-जरूरत पर थोड़ी-थोड़ी मात्रा में उसका सेवन करते जाइये। अन्यथा, इसमें खतरा है। केन्द्रित उद्योग स्वभावतः समाज-विरोधी होते हैं। इसलिए उनके लिए कोई मर्यादा निश्चित करनी चाहिए।"[1]

अब सवाल यहां मर्यादा निश्चित करने का उठता है जो कि काफी विकट है। आज बड़े एवं केन्द्रित उद्योग इतने अधिक फैल गये हैं कि उनकी मर्यादा तय करना कठिन हो गया है। आज तो हर काम केन्द्रित ढङ्ग से करने का प्रयास किया जाता है। हमें यहाँ स्वीकार करना चाहिये कि हद बांधने के काम को हम अपनी बुद्धि, विवेक, समस्याएँ एवं परिस्थिति को देखते हुए कर सकते हैं। जो उद्योग संपूर्ण राष्ट्र के लिए जरूरी है और जिसे कम पूंजी से नहीं चलाया जा सकता है, उसे केन्द्रीय ढङ्ग से चलाया जा सकता है। जैसे, यातायात, डाक तार, हवाई जहाज, लोहा इस्पात, विद्युत-शक्ति, अणुशक्ति, मशीन का उत्पादन, आदि। परन्तु हमेशा प्रयास यही रहे कि इनकी संख्या घटे, क्योंकि बढ़ाने पर तो हर काम केन्द्रित हो सकता है। हमें हमेशा ध्यान में रखना चाहिए कि भारत में श्रमशक्ति अधिक है, पूंजी कम है। साथ ही साथ वर्तमान आर्थिक परिस्थिति भी भिन्न है। भारत की समस्याएँ एवं परिस्थितियों पर विचार करने पर सहसा ध्यान छोटे एवं लघु उद्योगों पर चला जाता है।

छोटे उद्योगों का महत्व भारत में जिस रूप में है, उस रूप में पश्चिम के राष्ट्रों में नहीं है। इस संबन्ध में ब्रिटिश अर्थशास्त्री डा० ई० एफ० शुमाखेर ने अपने प्रति-

---

१. कुमारप्पा, वही, पृष्ठ १८०।

वेदन में कहा है, "किसी भी विकसित देश को औद्योगीकरण की वैसी समस्याओं का सामना नहीं करना पड़ा है, जो आज भारत को वेहद ऊँची और साथ-साथ वेहद खर्चीली विदेशी प्रौद्योगिकी की मौजूदगी और आंशिक घुसपैठ की वजह से करना पड़ रहा है। भारत में पहले से ही विशाल तथा बढ़ती जा रही ग्रामीण श्रमशक्ति को लघु उद्योगों के जरिये रोजगारी प्रदान करने के लिए आवश्यक है कि पारम्परिक कारीगरी के पाँच रुपये के औजार तथा आधुनिक उद्योगों की "पच्चास हजार रुपये की एक मशीन" के वीच की मध्यम प्राद्योगिकी का विल्कुल नया मार्ग अपनाया जाय।"[1] "यह प्रौद्योगिकी इतनी सस्ती होनी चाहिए कि अधिकाधिक लोग इसे प्राप्त कर सकें और देश की वचत तथा विदेशी मुद्रा के साधन-स्रोतों पर विना किसी दवाव के व्यापक पैमाने पर उसे प्रयोग में लाया जा सके।"[2]

इस प्रकार हम देखते हैं कि भारत में उद्योगों का विकास इस ढङ्ग से हो जिसमें (१) विशाल श्रमशक्ति का उपयोग किया जा सके। (२) उद्योगों को पूंजी पर ही व्यक्तिगत या सामूहिक आधार पर खड़ा किया जा सके। परन्तु पिछली योजनाओं में अपनाये गये रुख से स्पष्ट है कि सरकार ने इस क्षेत्र में अनुकूल नीति नहीं अपनाई है। फलस्वरूप अनेक प्रयत्नों के वावजूद आज छोटे उद्योग, ग्रामोद्योग, लघु एवं कुटीर उद्योग जो समाप्त हो गये थे या जो इन दिनों प्रारम्भ किये गये हैं, उनमें स्वयं चलते रहने की शक्ति नहीं आ सकी। आज अधिकांश छोटे उद्योग सरकारी सहायता के वल पर ही चल रहे हैं। ऐसा होने के दो कारण हो सकते हैं—(१) संपूर्ण योजना में उनको पर्याप्त स्थान नहीं दिया गया जिससे प्रतिस्पर्धा एवं अन्य कारणों से वे नहीं पनप सके। (२) ये उद्योग समाप्त हो गये थे और जो चल रहे थे वे अपने परम्परागत रूप में ही थे। अतः तकनीकी अज्ञानतावश वे आज के युग में नहीं टिक पा रहे हैं। इस पर विस्तार से चर्चा हम अन्य अध्याय में करेंगे।

गांधी जी ग्रामोद्योग को औद्योगीकरण में सर्वप्रमुख स्थान देते थे। उनका ग्रामस्वराज्य तो प्रत्येक गाँव को अधिकतम स्वावलंवी वनाने में ही था। ग्रामोद्योग के वारे में उन्होंने लिखा है, "ग्रामोद्योगों का यदि लोप हो गया, तो भारत के

---

१. डा० ई० एफ० शुमाखेर, रिफलेक्सन श्रान दि प्राब्लेम श्रॉफ ब्रिगिंग इन्डस्ट्रीज टू रूरल एरियाज, १९६२, योजना आयोग, नई दिल्ली।

२. ई० एफ शुमाखेर, उद्धत, मंजेश्वर सदाशिव राव, खादी ग्रामोद्योग, अक्टूबर १९६४।

७ लाख (अब पाँच लाख से अधिक) गाँवों का सर्वनाश ही समझिये।"[1] अगर भारत को यानी भारत के गाँवों को कायम रखना है तो उन्हें गाँवों में ही काम देना जरूरी है क्योंकि पूरे ग्रामवासियों को शहरों में लाकर बसाना और काम देना किसी भी हालत में संभव नहीं है। इसीलिए गांधी जी मानते थे कि "करोड़ों किसानों को उनके घरों में ही काम देना जरूरी है। घरों में काम देना यह एक उलझा विचार लग सकता है। आपत्ति की जा सकती है कि करोड़ों किसानों को उनके घरों में ही काम दिलाना न संभव है और न जरूरी ही। इस सिलसिले में पश्चमी देशों के आर्थिक विकास का दृष्टांत दिया जा सकता है। वहाँ तो औद्योगीकरण इसीलिए संभव हो सका कि गाँव से आबादी शहरों में गयी। पूँजीवादी विकास में यह क्रमशः मध्ययुग के अंतिम और आधुनिक युग की प्रारंभिक शताब्दि में हुआ। वैसे ही सोवियत संघ में कोई तीन योजनाओं में कठोर राजकीय नियंत्रण के द्वारा हासिल किया गया। इसलिए भारत में भी यह जरूरी है। यह कहा जा सकता है कि गाँवों से अतिरिक्त आबादी शहरों में खदेड़ी जाय और उन्हें औद्योगिक केन्द्रों में पूंजी-निर्माण के काम में लगाया जाय और गाँव में जिन वस्तुओं का वे उपभोग कर रहे थे उसे इकट्ठा करके इन्हीं केन्द्रों में काम करने वाले लोगों को पहुँचाया जाय। इस तरह बिना उपभोग में वृद्धि किये अतिरिक्त आबादी को गाँव से शहरों में तबादले से आर्थिक विकास किया जा सकता है। मारिस डाग ने, "सोवियत इकनामिक डेवलपमेंट" में विकास की इस नीति पर प्रकाश डाला है और इधर डब्लू० आर्थर लेवेस ने असीम श्रम के संचालन द्वारा आर्थिक विकास की संभावनाओं की चर्चा की है।

क्या विकास की इस प्रक्रिया को भारत में दुहराना संभव व श्रेयस्कर नहीं ? क्या करोड़ों किसानों को उनके घरों में ही काम देना जरूरी है ? यहाँ गांधी जी एक ऐतिहासिक तर्क का सहारा लेते हैं। गांधी जी लिखते हैं, "यह ग्रामीण सभ्यता हमें विरासत में मिली है।" अगर नागरीकरण की बुराइयों को छोड़ भी दें और नीति करें तो भी भारत की आबादी का जो ८० प्रतिशत या उससे अधिक भाग गाँवों में बसा हुआ है उसे मौजूदा या निकट भविष्य में कायम की जा सकने वाली औद्योगिक बस्तियों एवं नगरों में नहीं बसाया जा सकता है। अंग्रेजी राज्य ने जिन शहरों को बसाया उनमें कलकत्ता, बम्बई के महानगर अपने आबादी के बोझ से फटे जा रहे हैं। फिर इन महानगरों या उपनगरों की

---

१. गांधीजी, हरिजन सेवक, २३, ११, ३४।

जो सामाजिक लागत है, परिवार के मूल्यों का जो विघटन इन नगरों में हो रहा है, स्वास्थ्य और सौंदर्य जिस तरह वड़े पैमाने पर क्षीण हो रहा है, रोग, शराव-खोरी, वेश्यावृत्ति, चालों और खोलियों में रहना जिसे सुन्दर भाषा में हवा-महल के वाशिंदे कह सकते, सव तो इससे जुड़ा हुआ ही है। इस तरह भारत के करोड़ों लोगों को इन शहरों में वसाना न तो संभव है और न श्रेयस्कर ही। अगर उन्हें शहरों में वसाना संभव ही नहीं है तो इन करोड़ों ग्रामीणों को उनके घरों में ही कोई दूसरा धन्धा देना जरूरी हो जाता है।

तो परिस्थिति हमारे सामने यह है : (१) श्रमशक्ति का आधिक्य, (२) गाँवों का विखरा होना एवं घनी आवादी, (३) राष्ट्र में विशेषकर गाँवों में प्रतिव्यक्ति पूंजी की अत्यधिक कमी, (४) कुल आवादी का ८० से ८२ प्रतिशत का गाँवों में होना, (५) नागरीकरण एवं वड़े पैमाने पर इनको काम देना या नगरों में वसाने की असमर्थता, (६) भारत की अपनी विशेष सामाजिक, परिवार, कुटुंव, गाँव व्यवस्था, जिसमें अपनी सभ्यता एवं संस्कृति का गहरा असर है। इन अनेक समस्याओं के वीच में से ही सवके समाधान का रास्ता निकालना है। इस रास्ते के तलाश में हम किधर जायँ, देश में या विदेश में। वैसे भारतीयों को विदेश-प्रवास का शौक शुरू से रहा है। परन्तु हमारी राय यह है कि अव विदेश-प्रवास कम करके देश में ही प्रवास शुरू करना चाहिए। देश का आर्थिक विकास करना है, अतः तरीका भी देश का ही हो क्योंकि ऊपर वताई गई छः परिस्थि-तियाँ भी तो अपनी ही हैं। फिर पिछली तीन योजनाओं में विदेशी नमूने पर आधारित योजना का प्रतिफल सामने है। अगर विदेशी नकल का यही फल मिलने वाला था तो वह शुरू ही क्यों किया गया। आज अगर अमेरिका अन्न न दे तो हम भूखों मरें, वैसे मुँह तो हम दूसरों का हमेशा ताकते हैं। दूसरों की नकल करने में तो हम माहिर हैं। आज तो यह नकल करने का तरीका अपनी सीमा पार कर चुका है। खाना, पहनना, उठना-वैठना, वोलना, पढ़ना, हर काम में विदेशी प्रभाव है तो फिर भला योजना ही क्यों देशी हो। खैर देशी-विदेशी का सवाल छोड़ भी दें तो भी हमें ऐसी योजना चलानी चाहिए, ऐसा औद्योगीकरण, आधुनिकीकरण करना चाहिए जिससे कम से कम प्रत्येक को दो वक्त भोजन, पहनने को साल में १८ गज कपड़ा और रहने के लिए न चूने वाला मकान मिल जाए। इससे अधिक आशा भारत की ९९ प्रतिशत गरीव जनता नहीं रखती, शेष १ प्रतिशत लोग भले ही वातानुकूलित मकान और अपने कुत्ते को दूध रोटी एवं मांस खिलाने की आशा रखते हैं। लेकिन दुःख है कि आज हमारी योजना १ प्रतिशत के लोगों के लिए ही चल रही है।

तीसरा अध्याय

आधुनिक तकनीक के कुछ सामाजिक परिणाम

जब हम गांधी अर्थ-विचार के क्रमिक विकास को देखते हैं तो ऐसा प्रतीत होता है कि गांधी जी सम्पूर्ण पश्चिमी सभ्यता एवं संस्कृति से भिन्न विचार रखते थे। उन्होंने कहा है, "आज तक जो भी हमने सीखा है उसे भुला देना होगा।" "हिन्दस्वराज्य" में उन्होंने पश्चिमी सभ्यता एवं औद्योगिक विकास की कटु आलोचना की है। प्रारम्भ में तो हर मशीन, चाहे जैसी भी हो, की आलोचना करते थे। परन्तु जैसा कि उन्होंने खुद कहा है, "मेरा सततः विकास होता रहा है, और आगे होता रहेगा।" इस वाक्य के अनुसार उनके हर विचार में परिवर्तन होते रहे हैं। उद्योग, मशीन आदि के सम्बन्ध में तो विचारों में काफी परिवर्तन हुए हैं। परन्तु इस विचार-विकास में आदर्श से वे कभी भी विमुख नहीं हुए हैं। गांधी जी ने पश्चिमी सभ्यता को चुनौती दी और उसके विकल्प में भारतीय सभ्यता, संस्कृति का आदर्श प्रस्तुत किया। यहाँ हम पश्चिमी सभ्यता एवं उसका विकल्प और वहाँ की परिस्थिति में विकसित तकनीक के प्रभावों का अध्ययन करेंगे। यहाँ कुछ प्रश्न उठाये जा सकते हैं।

१. क्या उद्योग का विकास, तकनीक का विकास या यों कहें मशीनें भी सभ्यता-संस्कृति को प्रभावित करती हैं ?

२. क्या पश्चिमी सभ्यता भारत के अनुकूल है ? अगर नहीं तो क्यों ?

३. क्या तकनीक को भी बांटा जा सकता है, जैसे पश्चिमी तकनीक, भारतीय तकनीक आदि ?

गांधी जी का स्पष्ट मत है कि पश्चिमी सभ्यता भारत में नहीं चल सकती है। "हिन्द स्वराज्य" में पश्चिमी सभ्यता की कटु आलोचना मिलती है। पश्चिमी सभ्यता के विकास के मूलतः दो कारण गिनाये जा सकते हैं : (१) औद्योगीकरण का विकास, (२) औद्योगीकरण के परिणामस्वरूप गांवों का नाश और शहरों की वृद्धि। पिछली दो शताब्दियों में पश्चिमी राष्ट्रों में शहरों का विकास होता रहा है और आबादी जो बिखरी हुई थी, एक स्थान पर जमा होती गयी। वहाँ आबादी कम होने के कारण ऐसा होने में कोई कठिनाई भी नहीं आयी। परन्तु पश्चिमी

सभ्यता के कुछ आर्थिक आधार भी रहे हैं जिनके कारण वह धीरे-धीरे पनपती गयी। उद्योगों के विकास तथा नये-नये आविष्कारों के कारण बाजार का विस्तार हुआ। पश्चिमी देश व्यापार के क्षेत्र में आगे बढ़े। अतः वहाँ बेकारी की समस्या सामने नहीं आयी। हाँ, "बाजार" एक समस्या के रूप में सामने आया। फिर बाजार की होड़ में युद्ध भी हुए। परन्तु इस बाजार की तलाश का सबसे बड़ा परिणाम हुआ 'उपनिवेशवाद' का उदय। इस 'उपनिवेशवाद' की नीति ने पश्चिमी देशों को धनी बनाया, उन्हें हर दृष्टि से आगे बढ़ाया। इसी कारण वे अन्य राष्ट्रों पर हर दृष्टि—आर्थिक, सामाजिक, राजनीतिक—से हावी हो गये। पश्चिमी राष्ट्रों ने न केवल आर्थिक प्रभुत्व ही बढ़ाया, बल्कि सामाजिक, सांस्कृतिक एवं राजनीतिक प्रभाव भी बढ़ाया। परिणामस्वरूप एशिया, अफ्रीका एवं अन्य उपनिवेश राष्ट्रों की सभ्यता-संस्कृति नष्ट होती गयी। इन उपनिवेश राष्ट्रों का आर्थिक ढाँचा दिन-प्रतिदिन बिगड़ता गया। इसका एक मनोवैज्ञानिक प्रभाव यह पड़ा कि उपनिवेश राष्ट्र अपने को हीन समझने लगे। गुलामी इनकी स्वाभाविक क्रिया-सी हो गयी। अन्धानुकरण इनको पसन्द आने लगा। ये कुछ प्रभाव पश्चिमी सभ्यता के औद्योगीकरण और अंततः आधुनिक तकनीक के, गिनाये जा सकते हैं। हमें यह भी स्वीकार करना चाहिए कि पश्चिमी सभ्यता एवं आधुनिक तकनीक के फूलने-फलने एवं विकसित होने के मूल कारण में भी ये ही प्रभाव हैं। तकनीकी खोज, उपनिवेशों का विकास, बाजार की तलाश और सभ्यता-संस्कृति के दूसरे राष्ट्रों पर प्रभाव के कारण ही पश्चिमी सभ्यता इतनी आगे बढ़ सकी है। फिर अगर इसी विचार को आगे बढ़ायें तो यह भी कह सकते हैं कि इन सबके विकास के मूल में तकनीक का विकास है।

अब हम इन बातों को जिनके कारण पश्चिमी सभ्यता एवं तकनीक का विकास हुआ भारत के संदर्भ में विचार करें तो स्पष्ट हो जायगा कि भारत में वह क्यों नहीं लागू हो सकता है। पहले तो, जिस काल एवं परिस्थिति में पश्चिमी सभ्यता का विकास हुआ है, वह आज नहीं रहा। आज न तो उपनिवेशवाद का जमाना रहा और न ही बाजार के विकास की वे परिस्थितियाँ ही रहीं। उद्योगवाद एवं उससे उत्पन्न शहरीकरण के लिए जो परिस्थितियाँ आवश्यक थीं वे भारत में संभव नहीं। इस पश्चिमी सभ्यता के मूल में उपनिवेश रहा है। उपनिवेशों द्वारा शोषित धन से ही आज पश्चिमी सभ्यता फूली-फली है। परन्तु अब भारत के या यों कहें किसी भी राष्ट्र के प्रयास से उपनिवेशवाद सम्भव नहीं है। हम स्पष्ट देख रहे हैं हैं कि उपनिवेशों की समाप्ति के साथ ही उनके सामने अनेक समस्यायें उपस्थित रही हैं। उपनिवेशवाद के गर्भ में बाजार का लाभ निहित है। आज पश्चिमी

राष्ट्रों के सामने अपना बाजार स्थिर रखना शायद सबसे बड़ी समस्या है। अतः यह कहाँ तक तर्कसंगत एवं बुद्धिमानी की बात होगी जिस संकट से बचने का प्रयास वे कर रहे हैं उसे ही मोल लिया जाय। अगर हम उद्योगवाद को बढ़ावा देते हैं तो बाजार की तलाश अपरिहार्य है। उसके बिना उद्योगवाद का विकास सम्भव नहीं है। इस सम्बन्ध में गांधी जी ने कहा है, "मुझे भय है कि उद्योगवाद मानव जाति के लिए अभिशाप बन जाने वाला है। उद्योगवाद सर्वथा इस बात पर निर्भर है कि आप में शोषण करने की कितनी शक्ति है, विदेशी मंडियाँ आपके लिए कहाँ तक खुली हैं और प्रतिस्पर्धियों का कितना अभाव है। इङ्गलैण्ड के लिए ये बातें दिनों-दिन कम हो रही हैं, इसीलिए वहाँ बेकारों की संख्या रोज बढ़ रही है।"[1]

आगे जब हम भारत के सम्बन्ध में इन बातों को सोचते हैं तो गांधी जी का विचार है, "और जब इङ्गलैण्ड की यह हालत है तब भारत जैसे विशाल देश को तो उद्योगीकरण से लाभ होने की आशा ही नहीं की जा सकती है। सच तो यह है कि भारत जब दूसरे राष्ट्रों का शोषण करने लगेगा—और भारत में औद्योगीकरण हो गया तो वह जरूर शोषण करेगा—तब वह अन्य राष्ट्रों के लिए शाप और संसार के लिए खतरा बन जायगा। तब दूसरे राष्ट्रों का शोषण करने के लिए भारत में कल-कारखाने बढ़ाने का मैं क्यों विचार करूं?"[2] इस सम्बन्ध में गांधी जी ने आगे कहा है, "मैं नहीं मानता कि औद्योगीकरण हर हालत में किसी भी देश के लिए जरूरी है। भारत के लिए तो वह और भी कम जरूरी है। मेरा विश्वास है कि भारत दुःख से कराहती हुई दुनिया के प्रति अपना कर्त्तव्य अपने लाखों गाँवों का विकास करके और दुनिया के प्रति अपना कर्तव्य अपने लाखों गाँवों का विकास करके और दुनिया मित्रता का व्यवहार करके सादा परन्तु उदात्त जीवन अपनाकर ही पूरा कर सकता है।"[3]

यहाँ यह भी विचार करना समीचीन होगा कि भारत की अपनी समस्यायें हैं, अपनी सभ्यता एवं संस्कृति है जिसके कारण भी पश्चिमी सभ्यता अपनाना सम्भव नहीं है। भारत की सभ्यता, संस्कृति काफी प्राचीन है। भारत पाँच लाख गाँवों में बसा है न कि कुछ शहरों में। भारत के निर्माण एवं विकास का तात्पर्य है पाँच लाख गाँवों का विकास। अतः भारत में वे सभी योजनायें एक के बाद दूसरी

---

१. गांधी जी, ग्रामस्वराज्य, नवजीवन प्रकाशन मन्दिर, अहमदाबाद, १९६३, पृष्ठ ११।

२. गांधी जी, वही, पृष्ठ, ११।

३. गांधी जी, वही, पृ० ११।

असफल होती जायँगी जो कि गाँव से विमुख होंगी। यह तो कदापि सम्भव नहीं है कि पाँच लाख गाँवों को मिटा कर आबादी को कुछ शहरों में इकट्ठी कर दी जाय। फिर सभी गाँवों को शहर बनाने का प्रयास किया जाय, यह भी सम्भव नहीं है। इस बिखरी एवं घनी आबादी वाले देश का विकास तभी संभव है जब कि गाँवों को जिन्दा रखा जाय। इसका अर्थ यह कदापि नहीं है कि आज गाँव जिस रूप में पिछड़ा है उसी रूप में रहे। फिर भारत में जनसंख्या का दबाव इतना अधिक है कि उसे शहरों में इकट्ठा करना सम्भव नहीं है। हम आज ही स्पष्ट अनुभव कर रहे हैं कि शहरों की ओर दौड़ रोकने के लिए प्रयास आवश्यक है। परन्तु वास्तव में अगर इस शहरीकरण से बचना है तो हमें उसके मूल कारणों तक पहुँचना पड़ेगा। और वह मूल कारण है पश्चिमी सभ्यता से विमुखता एवं भारतीय सभ्यता एवं संस्कृति की रक्षा। इस सम्बन्ध में गाँधी जी ने कहा है, "गाँव की सभ्यता और शहरों की सभ्यता दोनों एक दूसरे से बिल्कुल भिन्न हैं। शहरों की सभ्यता यन्त्रों पर और औद्योगीकरण पर निर्भर करती है, और गाँवों की सभ्यता हाथ-उद्योगों पर निर्भर करती है। हमने दूसरों की सभ्यता को पसन्द किया है।"[1] अन्ततः हमें स्वीकार करना चाहिए कि भारत के गाँवों को समाप्त करना सम्भव नहीं है। तो इसके विपरीत यही माँग है कि पश्चिमी सभ्यता का विकल्प खोजें। यह विकल्प गाँधी जी ने हमारे सामने रखा। परन्तु इसका तात्पर्य यह नहीं कि गाँधी जी मशीन मात्र अथवा विज्ञान के विरोधी थे। गाँधी जी ने कहा है, "मैं गृह-उद्योगों का स्वागत करूंगा, यदि उससे भारत की दरिद्रता और उससे पैदा होने वाला आलस्य मिट सके।"[2]

अब इस सवाल को लिया जा सकता है जिसमें तकनीक, मशीन एवं सभ्यता, संस्कृति के सम्बन्ध का विचार आता है। हम पूछ सकते हैं कि यंत्र, मशीन जैसे निर्जीव पदार्थ सभ्यता, संस्कृति को कैसे प्रभावित कर सकते हैं ? मशीन तो मशीन है, उसे चाहे जैसे उपयोग करें। हाँ ! मशीन को चाहे जैसे उपयोग में लायें, परन्तु वह भी अंततः सभ्यता, संस्कृति को प्रभावित करती है। प्रत्येक प्रकार के समाज उद्योग, मशीन, यंत्र का अपना स्थान है। प्राचीन काल से मशीन का विकास होता रहा है। देश, काल एवं परिस्थितियों के अनुसार यंत्रों का आविष्कार हुआ। प्राचीन सभ्यता तकनीक से विमुख नहीं थी। उस समय भी यंत्र-औजार थे। पर वे आज से काफी भिन्न थे। फिर विभिन्न देशों के लोगों ने अपनी जरूरत एवं बुद्धि

---

१. गांधी जी, ग्रामस्वराज्य, पृष्ठ २२।

२. गांधी जी, ग्रामस्वराज्य, पृष्ठ २८।

के अनुसार उसे स्वयं गढ़ा था। प्राचीन भारत में जिस प्रकार की सभ्यता विकसित थी, यहाँ के औजार, यंत्र भी उसी प्रकार थे। उस समय भी योरोप के देशों में यंत्र थे। पर उनमें और भारत के जीवन में, उद्योग में और अंततः यंत्र में भी भेद था। यहाँ का युद्ध-कौशल, कला और उद्योग अपनी खोज का परिणाम था। भारत में जिस ढङ्ग की सभ्यता विकसित थी, उसी ढङ्ग के यंत्रों का विकास हुआ था। हमें यह स्वीकार करना चाहिए कि यंत्र का समाज पर काफी प्रभाव पड़ता है। आज पश्चिमी तकनीक के अन्य देशों पर पड़ रहे प्रभाव को प्रत्यक्ष देखा जा सकता है। आज का तकनीक अपने विकास का जो लक्ष्य रखता है। उसका आधार उपनिवेशवाद रहा है। प्राचीन काल में जो तकनीक विकसित हुई थी, वह भारत में खेतिहर संस्कृति का परिणाम थी। हम यहाँ प्राचीन एवं आधुनिक तकनीक के भेद का संक्षिप्त अध्ययन कर सकते हैं: (१) प्राचीन तकनीक की खोज आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए की गयी थी। परन्तु आज तकनीक का विकास अपनी असीमित इच्छाओं की पूर्ति एवं अपना प्रभाव जमाने की इच्छा से किया जाता है। (२) प्राचीन तकनीक अपने देश, काल एवं परिस्थिति के अनुकूल विकसित हुई थी। आज की तकनीक का विकास प्रत्येक देश के लिये समान दृष्टि से किया जाता है। (३) प्राचीन तकनीक का आकार-प्रकार छोटा था। आज विशाल तकनीक का निर्माण होता है जिसका अंतिम प्रभाव समाज के हर क्षेत्र पर पड़ता है। इसे कोई शक्तिशाली संगठन ही चला सकता है। ये कुछ भेद गिनाये जा सकते हैं।

अब इनके प्रभावों के बारे में पश्चिमी औद्योगीकरण के मूल में जो बातें रही हैं, अगर हम उन्हें अपनाते हैं तो वे हमारी सभ्यता, संस्कृति को अवश्य प्रभावित करेंगी। जिस परिस्थिति में पश्चिमी तकनीक का विकास हुआ है, उस परिस्थिति में ही आज भी वह विकसित हो सकता है। अतः अगर हम पश्चिमी तकनीक एवं यंत्रों को अपनाते हैं तो उसकी सभ्यता भी प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से हमें अवश्य प्रभावित करेगी। फिर जैसा कि हमने ऊपर देखा कि बड़े औद्योगीकरण को विकसित होने के लिए उपनिवेश, बाजार एवं शहरीकरण आवश्यक हैं, ऐसी स्थिति में शहरी एवं औद्योगिक सभ्यता फैलना भी स्वाभाविक है। पश्चिमी औद्योगीकरण जिस केन्द्रित रूप से आगे बढ़ता है, उसी रूप में वह सब जगह बढ़ने का प्रयास करता है। इसके प्रत्यक्ष उदाहरण भी भारत के औद्योगीकरण की प्रक्रिया में ढूंढ़े जा सकते हैं। यहाँ पश्चिमी देशों की पूंजी, तकनीकी कौशल अन्य प्रकार के विशेषज्ञ आदि लगते हैं, साथ ही साथ उनके उपयोग से जो उत्पादन होता है, जो प्रतिफल मिलता है उसका स्वरूप भी पश्चिमी होता है। हम प्रत्यक्ष

देख रहे हैं कि भारत में हर कार्य पश्चिमी राष्ट्रों के नमूने पर किये जा रहे हैं। इसे हम जीवन के हर क्षेत्र में देख सकते हैं। जैसे रहन-सहन, पोशाक, मकान, व्यवहार, भाषा, जीवन का मापदण्ड, सब पर इस सभ्यता का असर पड़ रहा है। इन सब पर पश्चिमी सभ्यता का पूरा असर देखा जा रहा है, उसके अन्धानुकरण से लोग बाज नहीं आते, भले ही उसका असर हमारे ऊपर बुरा ही पड़े। बुरा असर पड़ना स्वाभाविक भी है, क्योंकि हमारी सभ्यता, संस्कृति एवं मूल प्रकृति ही पश्चिम से बिलकुल भिन्न है। यहाँ हमें स्वीकार करना चाहिए कि आज भारतीय मानस ऐसा बन रहा है कि भारतीय चीजें, व्यवहारों, कार्यों के ढंग, रहन-सहन एवं पोशाक तक को लोग हेय दृष्टि से देखते हैं और पश्चिमी ढंग को प्रतिष्ठा की दृष्टि से देखते हैं। इस सम्बन्ध में उदाहरण पेश करने की कोई जरूरत नहीं है। ये सब अंततः औद्योगीकरण एवं पश्चिमी सभ्यता का ही तो परिणाम है। कुछ लोग इस प्रकार के प्रभावों को उचित एवं विकास का द्योतक भी मान लेते हैं। परन्तु हमें यहाँ गांधीजी की चेतावनी ध्यान में रखनी चाहिए कि, "बेशक, यूरोपीय सभ्यता यूरोप वालों के लिए अच्छी है, लेकिन अगर हम उसकी नकल करेंगे तो वह भारत को बर्बाद कर देगी। मेरा यह मतलब नहीं कि इस सभ्यता में जो कुछ अच्छा है और हमारे पचाने लायक हो उसे अपना कर हम न पचायें। भौतिक सुख-सुविधाओं की निरन्तर खोज और उनकी वृद्धि यूरोपीय सभ्यता में घुसी हुई ऐसी एक बुराई है, और मैं यह कहने का साहस करता हूँ कि यूरोप के लोग जिन सुख-सुविधाओं के गुलाम बनते जा रहे हैं उनके बोझ के नीचे दबकर यदि उन्हें नष्ट नहीं होना है तो उनको अपने आज के दृष्टिकोण का सुधार करना होगा।"[1] यदि गांधीजी की उपरोक्त चेतावनी में तनिक भी सत्यता है तो यह गम्भीरतापूर्वक विचार करने योग्य है।

फिर इन प्रभावों को हम परिवार, गाँव एवं समाज में हो रहे परिवर्तन में भी देख सकते हैं। भारतीय खेतिहर संस्कृति की अपनी विशेषता रही है। इसका परिवार, गाँव, धर्म, परम्परा का अपना संगठन रहा है। गाँव का संगठन जिस ढंग से भारत में मजबूत रहा है, शायद अन्य देशों में ऐसा नहीं रहा है। यहाँ के व्यक्ति का विकास परिवार एवं गाँव के पारिवारिक वातावरण में होता है और अंततः वह परिवार एवं गाँव के प्रति उत्तरदायी होता है। भारत के प्रत्येक नागरिक का किसी-न-किसी रूप में अपने संयुक्त परिवार से गहरा सम्बन्ध होता है। ८२ प्रतिशत जनता जो गाँवों में निवास करती है, चाहे वह कहीं भी नौकरी

---

१. गांधीजी, ग्राम स्वराज्य, पृष्ठ १५।

करता हो, कहीं भी रहता हो उसका दिमाग गाँव में, अपने परिवार में रहता है। जो लोग बाहर नौकरी करते है मजदूरी करते वे भी अंततः गाँव, परिवार से जुड़े रहते हैं। गाँव में उनकी जमीन है, घर है, परिवार है, अतः उससे वे अलग नहीं हो सकते हैं। आज ऐसी स्थिति है। और लगता है कि आगे आने वाले दशकों में भी ऐसी स्थिति नहीं आने वाली है जिसमें कि उन लोगों का जो अपने गाँव से बाहर रहते हैं, अपने गाँव से सम्बन्ध टूट जाय। यहाँ फिर वही सवाल उठता है कि अगर औद्योगीकरण करना है तो उन तमाम लोगों को जो कि नौकरी करते हैं, मजदूरी करते हैं उन्हें पूर्णतया औद्योगिक केन्द्रों में, शहरों में बसाना होगा। उनके पूरे परिवार को वहीं लाने की और गाँव से सम्बन्ध-विच्छेद करने की सुविधा देनी होगी। क्योंकि जब तक वे गाँव से जुड़े रहते हैं, उनका मन गाँव में रहता है, गाँव में ही अंतिम जीवन व्यतीत करने की सुविधा एवं लोभ रहता है, तब वे मानसिक रूप से नौकरी एवं मजदूरी में पूरी तन्मयता से काम नहीं कर पायेंगे। आज मजदूरों, नौकरी करने वालों की ऐसी स्थिति नहीं है कि वे पूर्णतया शहरों में बस जायँ। परन्तु ये सब बातें संभव भी तो नहीं। क्योंकि पहले तो उनका गाँव से, अपने संयुक्त परिवार से जो मोह है उसे छुड़ाना आसान नहीं है। फिर अगर आर्थिक लोभ देकर ऐसा करने का प्रयास किया भी गया तो उनको बसाना एक विकट समस्या है। इस बारे में यह आपत्ति उठाई जा सकती है कि ये दलील ठीक नहीं है। अगर औद्योगीकरण हुआ तो वे आज न कल धीरे-धीरे स्वयं शहरों में आ जायेंगे। पर ऐसा मानना उचित नहीं होगा। हम अध्ययन करके देख सकते हैं कि पिछले १५ वर्षों के औद्योगीकरण में जो लोग गाँव से नौकरी या मजदूरी करने गाँव से बाहर आये उनमें से कितनों का गाँव से सम्बन्ध विच्छेद हुआ है?

परन्तु यहाँ सवाल गाँव से सम्बन्ध-विच्छेद करने का नहीं है। सवाल है कि क्या पूरी आबादी को या अधिकांश को गाँव से शहर लाया जा सकता है और अगर ऐसा करने का प्रयास किया गया तो उसका समाज पर कैसा प्रभाव पड़ेगा। जैसा कि हम आगे देखेंगे कि अधिकांश या कुल आबादी को औद्योगिक नगरों में इकट्ठा करना किसी भी हालत में न तो संभव है और न ही श्रेयस्कर। अगर ऐसा करने का प्रयास किया गया तो उसका परिणाम यही होगा कि एक तरफ तो हमारी परंपरागत सामाजिक व्यवस्था बिगड़ जायगी, सामाजिक मान्यतायें अव्यवस्थित हो जायँगी, दूसरी तरफ हमारा आर्थिक ढाँचा भी बिगड़ जायेगा।

अब अगर तीसरे प्रश्न पर विचार करें तो तकनीक के बँटवारे का प्रश्न आता है। वैसे तो तकनीक स्वयं में निर्जीव वस्तु है, उसका अपना स्वतन्त्र कोई

व्यक्तित्व नहीं होता है। परन्तु तकनीक का प्रभाव जीवन के हर क्षेत्र में पड़ता है। इस दृष्टि से तकनीक के आकार-प्रकार एवं शक्ति की दृष्टि से बँटवारा किया जा सकता है। जिस प्रकार के तकनीकी यंत्र का विकास पश्चिम के राष्ट्रों में हुआ है, उसी प्रकार का तकनीक भारत-जैसे देश में भी हो यह उचित एवं आवश्यक नहीं है। पश्चिमी राष्ट्रों, या यों कहें औद्योगीकरण पर आधारित राष्ट्रों की अपनी समस्यायें, सुविधायें, एवं परिस्थितियाँ हैं जो कि हमें प्राप्त नहीं हैं। मोटे तौर पर उनसे हमारी भिन्नता को निम्न रूपों में देखा जा सकता है: (१) आबादी की दृष्टि से भिन्नता, जिसका प्रभाव रोजगार पर पड़ता है। (२) सभ्यता एवं सांस्कृतिक भिन्नता, जो विशेष ढंग की पारिवारिक मान्यता पर आधारित है। (३) ग्रामीण एवं शहरी जीवन की भिन्नता जो कि क्रमशः ८२ और १८ प्रतिशत के अनुपात में भिन्न है। (४) प्राकृतिक परिस्थितियाँ एवं साधनों की भिन्नता। इन भिन्नताओं पर विचार करें तो स्पष्ट होगा कि भारत में भारी पैमाने के मशीन एवं केन्द्रित ढंग पर आधारित औद्योगीकरण संभव नहीं है। परन्तु ऐसा नहीं मानना चाहिए कि ऐसी स्थिति में भारत में नवीन तकनीक का विकास होगा ही नहीं। इस संदर्भ में हाल में ही एक विचार धारा मध्यम औद्योगिकी की चली है। भारत में प्रोफेसर डी० आर० गाडगिल एवं ब्रिटिश अर्थशास्त्री ई० एफ० शुमाखेर ने इस संबन्ध में अपने विचार व्यक्त किये हैं और कहा है कि भारत में ऐसे तकनीक का विकास किया जाना चाहिए जो कम पूंजी से खरीदी जा सके और अधिक से अधिक रोजगार प्रदान कर सके। श्री शुमाखेर ने कहा है, "भारत में पहले से ही विशाल तथा बढ़ती जा रही ग्रामीण श्रम-शक्ति को लघु उद्योगों के जरिये रोजगार प्रदान करने के लिए आवश्यक है कि पारम्परिक कारीगरों के पाँच रुपये के औजार तथा आधुनिक उद्योगों की पच्चीस हजार रुपये की मशीन के बीच की मध्यम औद्योगिक प्रौद्योगिकी का बिलकुल नया मार्ग अपनाया जाय। यह प्रौद्योगिकी इतनी सस्ती होनी चाहिए कि अधिकाधिक लोग उसे प्राप्त कर सकें और देश की बचत तथा विदेशी मुद्रा के साधन-स्रोतों पर बिना किसी दबाव के व्यापक पैमाने पर उसे प्रयोग में लाया जा सके।"[1] यहाँ हमें यह भी स्वीकार करना चाहिए कि गांधी जी कभी भी ऐसे सुधारों की तारीफ करने को तैयार थे जो कि देश के करोड़ों का हित-साधन करता हो और हमारी सभ्यता, संस्कृति के अनुकूल हो। गांधीजी ने कहा है, "मैं अधिक

---

१. ई० एफ० शुमाखेर, उद्धृत, मन्जेश्वर सदाशिव राव, खादी ग्रामोद्योग, खादी ग्रामोद्योग कमीशन, बम्बई, अक्तूबर १९६४, पृ० १२९।

से अधिक विकसित यंत्रों के उपयोग का भी समर्थन करूँगा, यदि उससे भारत की दरिद्रता और उससे पैदा होने वाला आलस्य मिट सके।"[1]

यहाँ यह भी सवाल उठाया जा सकता है कि यह मध्यम औद्योगिकी की क्षमता की कीमत की सीमा रेखा कैसे बाँधी जायगी। परन्तु इस प्रश्न का उत्तर तो अपनी परिस्थिति एवं समस्याओं को देख कर ही दिया जा सकता है और फिर इसका आकार-प्रकार भी घटता-बढ़ता रह सकता है। फिर इसकी कोई निश्चित सीमारेखा नहीं बनायी जा सकती है। कुछ बड़े उद्योग अवश्य ही होंगे जो कि केन्द्रित एवं बड़े पैमाने के होंगे। यह आवश्यक भी है। इस मध्यम औद्योगिकी की सीमा के सम्बन्ध में श्री शुमाखेर ने कहा है, "इस प्राद्योगिकी के अंतर्गत एक कार्य-स्थल जिसमें औसतन एक हजार से दो हजार रुपये तक की पूंजी की लागत होगी।"[2] परन्तु इसे कोई बिलकुल निश्चित सीमा नहीं माना जा सकता है। हमारा प्रयास तो यही रहना चाहिए कि ऐसी मशीन, यंत्र का विकास हो जो कि अधिक से अधिक श्रम-शक्ति का उपयोग करें और साथ ही साथ उससे इतना उत्पादन हो सके जिससे एक अच्छा जीवन बिताया जा सके। इस सवाल को आगे न बढ़ा कर कह सकते हैं कि तकनीक का विकास भी अपनी प्रकृति एवं परिस्थिति के अनुकूल ही करना चाहिए। यहाँ यह स्पष्ट है कि भारत में इस प्रकार जो तकनीक विकसित होगी, वह पश्चिम के भारी औद्योगीकरण से सर्वथा भिन्न होगी।

———

१. गांधीजी, ग्रामस्वराज्य, पृष्ठ १८।

२. शुमाखरे, उद्धृत, मन्जेश्वर सदाशिव राव, खादी ग्रामोद्योग, बम्बई, अक्तूबर १९६४, पृ० १२९।

देश एक निश्चित भौगोलिक व राजनीतिक इकाई है और तमाम अन्तर्राष्ट्रीय एकता के प्रयत्नों, विज्ञान, टेकनालाजी के आविष्कार के बावजूद बना रहने वाला है। क्योंकि पहले तो तेज चलने वाले साधन सबके लिए उपलब्ध नहीं हैं, फिर अगर यह उपलब्ध भी हो जाय तो भी राष्ट्रीय सीमाओं के प्रति जो मोह है उसमें कोई कमी नहीं होती है। अगर यह भी मान लें कि राष्ट्रीय सीमाओं का यह मोह खतम हो जाता है और राष्ट्रों की अखंडता की स्थान एक विश्वजनीन सार्वभौविमकता ले लेती है तो भी देश एक भौतिक इकाई के रूप में हमेशा बना रहता है।

गांधी जी ने स्वदेशी को देश के क्षेत्र में स्वधर्म का विस्तार कहा है—ऐसा कर्त्तव्य जो कभी छूटता नहीं या कम से कम छूटना नहीं चाहिए। यहाँ कुछ लोगों को स्वधर्म जैसी शब्दावली से चिढ़ हो सकती है लेकिन अपने-अपने कर्त्तव्यों को जो भी नाम दें, उस कर्त्तव्य से तो छुटकारा मिलने को नहीं और सचमुच अपने कर्त्तव्य में दृढ़ रहते हुए मृत्यु भी श्रेयस्कर है, परधर्म भयानक है। अब अगर इस परिभाषा को अर्थ के क्षेत्र में लागू करें तो इसका क्या मतलब होगा? गांधी जी के अनुसार इस परिभाषा का मतलब है, "अर्थ के क्षेत्र में मुझे अपने पड़ोसियों द्वारा बनायी गयी वस्तुओं का ही उपयोग करना चाहिए और उन उद्योगों की कमियाँ दूर करके उन्हें ज्यादा संपूर्ण और सक्षम बनाकर उनकी सेवा करनी चाहिए।"[1] और ये बातें अधिक नियमों से भी पुष्ट की जा सकती हैं। उद्योगों के स्थान के बारे में जो बहस है उसमें आसपास के कच्चा माल व अन्य साधनों की उपलब्धि व उपयोग पर जोर दिया जाता है, उसमें भी यह तर्क निहित है, परन्तु ब्रिटिश भारत में भी स्वदेशी के इन नियमों का पालन नहीं हुआ है और गांधीजी के अनुसार, "जनता की अधिकांश गरीबी का कारण है कि आर्थिक व औद्योगिक जीवन से स्वदेशी के नियम को भङ्ग किया गया है।"[2]

स्वदेशी नियम के पालन का मतलब, "अगर हम स्वदेशी के सिद्धान्त का पालन करें तो हमारा व आपका कर्त्तव्य होगा कि हम उन बेरोजगार पड़ोसियों को ढूंढ़ें जो हमारी आवश्यकता की वस्तुयें हमें दे सकते हैं और यदि वे इन वस्तुओं को बनाना न जानते हों तो उन्हें हम उसकी प्रक्रिया सिखा दें। ऐसा हो तो

---

१. गांधीजी, सम्पादक वी० वी० खरे, आर्थिक और औद्योगिक जीवन, नव जीवन प्रकाशन।

२. गांधीजी, संम्पादक वी० वी० खरे, आर्थिक और औद्योगिक जीवन, नव जीवन प्रकाशन।

भारत का हर एक गाँव लगभग स्वाश्रयी और स्वयं पूर्ण इकाई बन जाय। दूसरे गाँवों के साथ वह ऐसी कुछ वस्तुओं का आदान-प्रदान करेगा जिन्हें वह खुद अपनी सीमा में पैदा नहीं कर सकता। मुमकिन है, कुछ लोगों को यह बात व्यर्थ मालूम हो, उन लोगों से मैं कहूँगा भारत एक विचित्र देश है।"[1]

इस सिलसिले में गांधीजी ने जीवन-काल में जो प्रयोग किये, वे अ० भा० ग्रामोद्योग एवं अन्य सम्बद्ध संस्थाओं से सम्बन्धित रहे हैं।

गांधीजी ने स्वदेशी की एक नयी व्याख्या करते हुए कहा "अ० भा० ग्रामोद्योग संघ के लिए तो स्वदेशी में वे सब चीजें आ जाती हैं जो भारत में उन छोटे उद्योगों से मिलती हैं जिनको प्रोत्साहन देने के लिए जनता का सहयोग करने की जरूरत होती है और जो ग्रामोद्योग सङ्घ के नियंत्रण में रहती हैं।"[2] यह व्याख्या ग्रामोद्योग सङ्घ की क्षमता को और देश की तत्कालीन आर्थिक व राजनीतिक परिस्थिति को देखते हुए की गई। यह एक सीमित परिभाषा है, व्यापक नहीं। गांधी जी ने स्वीकार किया है कि "मैंने स्पष्ट कर दिया है कि मेरा यह सिद्धान्त तो ग्रामोद्योग सङ्घ के ही पथ-प्रदर्शन के लिये है। वह स्वदेशी के समस्त क्षेत्र में व्यापक होने का दावा नहीं करता है।"[3] अब इस परिभाषा को और व्यापक बनाना जरूरी है और संभव भी है। अब भारत स्वतंत्र है और अपने आर्थिक विकास की योजनाओं को चला रहा है। स्वदेशी दृष्टि से इन योजनाओं में अब उन धन्धों के अलावा अन्य धन्धों को भी शामिल किया जा सकता है जिन्हें अ० भा० ग्रामोद्योग सङ्घ द्वारा चलाना गांधीजी के लिए संभव नहीं था। इस व्यापकता की ओर लगता है गांधीजी ने स्वयं संकेत किया है, "कोई भी वस्तु स्वदेशी हो सकती है अगर वह करोड़ों देशवासियों को हित-साधन करती हो, चाहे पूँजी व कला-कुशलता भी विदेशी हो मगर अच्छे योग्य भारतीयों के 'कन्ट्रोल' में हो।"[4]

इस व्यापक व्याख्या से तो ऐसा लगता है कि विदेशी उद्योग धन्धे, पूँजी और तकनीकी ज्ञान की सहायता से चलने वाले उद्योग-धन्धे भी अगर करोड़ों देशवासियों का हित-साधन करते हों तो स्वदेशी कहलायेंगे। प्रश्न यह है अगर विदेशी पूँजी को स्वदेशी के साथ मिला दिया जाया या विदेशी हुनर को स्वदेशी

---

१. गांधीजी, ग्रामस्वराज्य, नव जीवन प्रकाशन, अहमदाबाद, १९६३।

२. गांधीजी, स्वदेशी और ग्रामोद्योग।

३. गांधीजी, स्वदेशी और ग्रामोद्योग।

४. वही।

के साथ, तो क्या वह स्वदेशी रहेगी ? इन सब प्रश्नों का उत्तर देते हुए उन्होंने लिखा है, "इस प्रकार चरखा सङ्घ की व्याख्या के अनुसार खादी सच्ची स्वदेशी है हालाँकि पूँजी भले ही सारी विदेशी हो और भारतीय बोर्ड द्वारा नियुक्त खादी निष्णात भी पाश्चात्य हो। इसके विपरीत बाटा के रबर के या दूसरे जूते विदेशी माने जायेंगे, भले ही उसमें सब हिन्दुस्तानी हों और पूँजी भी हिन्दुस्तान से लेकर लगायी गयी हो।"[1] ये दोनों ही उदाहरण आंशिक रूप से कल्पित हैं, क्योंकि चरखा सङ्घ की पूँजी स्वदेशी है और कारीगर भी सब देशी ही हैं। ऐसे ही बाटा कम्पनी में तब भी हिन्दुस्तानी थे। लेकिन ये तो उदाहरण हैं, इनकी रोशनी में विदेशी पूँजी और विशेषज्ञों के ऐसे प्रयोग किये जा सकते हैं जिनसे करोड़ों देशवासियों का हित-साधन हो। गांधीजी के अनुसार यह भी स्वदेशी हैं, विदेशी नहीं। क्योंकि जैसा कि गांधीजी ने लिखा है, "स्वदेशी धर्म मानने वाला अपने कुएँ में डूबेगा नहीं, जो वस्तु स्वदेश में नहीं बनती अथवा कष्ट से ही बन सकती हो, वह परदेश के देश के कारण अपने देश में बनाने बैठ जायें तो इसमें स्वदेशी धर्म नहीं है। स्वदेशी धर्म पालने वाला परदेश का द्वेष करेगा ही नहीं।"[2]

किन्तु गांधीजी के नेतृत्व में चलने वाले स्वदेशी आन्दोलन के फलस्वरूप इंगलैन्ड के कपड़े के निर्यात में काफी कमी आयी। यह इंगलैन्ड की स्पष्ट आर्थिक हानि है तो क्या यह परदेश के प्रति द्वेष नहीं ? गांधीजी के अनुसार यह इंगलैन्ड के मिलवालों का नुकसान नहीं फायदा है। 'मंगलप्रभात' में 'स्वदेशी व्रत' शीर्षक से गांधीजी ने लिखा है, "कोई यह न माने कि इस धर्म के पालन से परदेशी मिलवालों को नुकसान होता है। चोर को चुराई हुई चीज वापस देनी पड़े या वह चोरी करते रोका जाय तो उसमें उसे नुकसान नहीं है, फायदा है। पड़ोसी शराब पीना या अफीम खाना छोड़ दे तो जो इसमें कारबार करे या अफीम के दुकानदार को नुकसान नहीं लाभ है, वे नाजायज तरह से अर्थ साधते हैं। उनके इस अनर्थ का नाश होने में उनको और जगत् को फायदा ही है।"[3] इस तर्क पर यह कहा जा सकता है कि यह सब नैतिक दृष्टि से ठीक हो सकता है, पर आर्थिक दृष्टि से यह कहाँ तक उचित है ? क्योंकि इंगलैण्ड की राष्ट्रीय आय, उत्पादन व रोजगार

---

१. गांधीजी, हरिजन, २५ फरवरी १६३६।

२. गांधीजी, मंगल प्रभात, उद्धृत, मेरे सपनों का भारत, नवजीवन प्रकाशन, पृष्ठ १३५।

३. वही, मंगल प्रभात।

का बड़ा हिस्सा विदेशी व्यापार पर निर्भर है और अगर निर्यात व्यापार स्वदेशी व्रत के पालन से घटता है तो आयात भी घटेगा और आयात-निर्यात घटेगा तो कुल विदेशी व्यापार और इसलिए कुल उत्पादन और रोजगार कम होगा और यह तो ब्रिटेन की स्पष्ट आर्थिक हानि है। गांधीजी के दिनों में यह आपत्ति और भी अधिक महत्व की थी और उनका जवाब इस प्रकार है, "मैं अर्थशास्त्री नहीं हूं लेकिन मैंने ऐसी कुछ किताबें पढ़ी हैं जिनमें बतलाया गया है कि इंगलैण्ड आसानी से अपनी सारी जरूरतें पूरी करने वाला आत्मनिर्भर देश बन सकता है।"[1]

परन्तु आत्म-निर्भरता की बात ब्रिटेन के लिए उस समय हास्यास्पद लगती थी, क्योंकि तब ब्रिटिश साम्राज्य में सूरज नहीं डूबता था। लेकिन आज जब कि ब्रिटिश साम्राज्य का सूरज डूब गया है तो इसे क्रमशः आत्म-निर्भरता की ओर और अपने पड़ोसी योरप की ओर देखने के लिए विवश होना पड़ा है; लेकिन आम प्रवृत्ति क्रमिक रूप से बढ़ती हुई स्वदेशी और आत्म-निर्भरता की ओर है। ऐसी स्थिति में ऐतिहासिक दृष्टि से गांधीजी का यह मत सही लगता है कि भारत में स्वदेशी व्रत के पालन से ब्रिटेन की परदेशी मिलों को नुकसान नहीं फायदा होता, क्योंकि दीर्घकाल में तो यह अस्वाभाविक लाभ चलने वाला नहीं है इसलिए जितनी जल्दी इस अस्थायी लाभ से बच कर स्थायी अर्थव्यवस्था की ओर बढ़ा जा सके, उतना ही अच्छा है।

एक और आक्षेप स्वदेशी पर लगाया जाता है। आक्षेपकारों का कहना है कि यह एक अत्यंत स्वार्थपूर्ण सिद्धांत है और सभ्य जनों की मानी हुई नीति में इसका कोई स्थान नहीं हो सकता है। वे मानते हैं कि स्वदेशी का पालन तो संकीर्ण राष्ट्रीयता को जन्म देता है। इस आक्षेप के बारे में गांधी जी का यह मत है कि नम्रता व प्रेम से नियमों के साथ एकमात्र स्वदेशी का ही मेल बैठ सकता है। यदि मैं अपने परिवार की यथोचित सेवा न कर पाता हूं तो उस हालत में मेरा संपूर्ण भारत की सेवा का विचार करना अभिमान ही कहा जायगा। ऐसे अगर कोई अपने देश की सेवा नहीं कर सकता तो सारे संसार की सेवा का विचार उसका अहंकार ही कहा जायगा। इसलिए यही अच्छा होगा कि व्यक्ति पहली हालत में तो पड़ोसी की सेवा पर अपना ध्यान केन्द्रित करे और परिवार, फिर देश की सेवा के जरिये पूरे मानव-जाति की सेवा करे।

यह भी कहा जाता है कि भारत कम से कम आर्थिक जीवन में स्वदेशी

---

१. गांधीजी, मेरे सपनों का भारत, नवजीवन प्रकाशन, अहमदाबाद, दूसरी बार, १९६२, पृ० १३१।

के नियम का आचरण नहीं कर सकता, क्योंकि यह देश योजनावद्ध रूप से आर्थिक विकास के कार्यक्रम में लगा हुआ है और आर्थिक विकास के लिए औद्योगीकरण जरूरी है, और औद्योगीकरण के लिए मशीन एवं तकनीकी ज्ञान की आवश्यकता है और ये मशीनें और तकनीकी विशेषज्ञ देश में हैं नहीं। इसलिए उनका विदेशों से आयात जरूरी है, ऐसी स्थिति में स्वदेशी व्रत का पालन कैसे हो सकता है? इस प्रश्न पर गांधीजी का उत्तर स्पष्ट है। पहले तो अगर यह विदेशी पूंजी व हुनर भारत के करोड़ों के हित के सावन के लिए है और भारतीय नियंत्रण में है तो गांधी जी की परिभाषा के अनुसार यह भी स्वदेशी ही है। लेकिन फिर एक हिस्सा इस विदेशी पूंजी व हुनर का ऐसा जरूर है जो करोड़ों के हित में नहीं, अहित में है। और जिन थोड़े से लोगों को इसकी जरूरत है, वे थोड़ा-सा शारीरिक कष्ट उठा कर इन चीजों के अभाव से अपने को मुक्त कर सकते हैं। स्वदेशी का सच्चा प्रेम हो तो टेरलीन एवं नायलान जैसी चीजों का अभाव भय का कारण नहीं होना चाहिए। स्वदेशी का व्रत लेने वाला गांधी जी के अनुसार, "ऐसी सैकड़ों चीजों के विना ही अपना काम चलाना सीख लेगा जिन्हें आज वह अपने लिए जरूरी समझता है। स्वदेशी आखिर एक आदर्श है जिसे सतत् प्रयत्न द्वारा प्राप्त करना है और यदि फिलहाल हम इस नियम को अमुक वस्तुओं तक ही मर्यादित रखें और जो वस्तुयें देश में प्राप्य नहीं हैं उनका उपयोग जारी रखेंगे तो भी हम अपने आदर्श की दिशा में वढ़ सकते हैं।"[1]

इस स्वदेशी व्रत की आज की परिस्थिति में क्या भूमिका है? इस व्रत के पालन में क्या सिर्फ कुछ प्रवुद्ध लोगों के विवेक पर ही निर्भर रहा जा सकता है या सरकार की भी कोई भूमिका इस सिलसिले में हो सकती है। सरकार की भूमिका इन दिनों विशेष महत्व की हो गयी है, क्योंकि आर्थिक विकास के संदर्भ में भी सरकार के अधिकार एवं कर्त्तव्य इन दिनों व्यापक हो गये हैं। इस सिलसिले में गांधी जी ने लिखा है, "मैं कानून द्वारा किये जाने वाले हस्तक्षेप को, फिर वह जीवन के किसी भी भाग में क्यों न किया जाय विलकुल नापसंद करता हूँ। उसके समर्थन में ज्यादा से ज्यादा यही कहा जा सकता है कि दूसरी वुराइयों की तुलना में वह कम वुरी है, लेकिन अपनी इस नापसंदगी के वावजूद मैं माल पर सख्त आयात कर लगाने की वात न सिर्फ सह लूंगा वल्कि चाहूंगा कि ऐसा किया जाय।"[2]

गांधी जी की यह नीति आजकल की आर्थिक राष्ट्रीयता और संरक्षण की नीति से मिलती-जुलती है और मुक्त व्यापार की नीति के प्रतिकूल है। क्योंकि

१. स्वदेशी और ग्रामोद्योग।

२. वही,

गांधी जी ने ठीक ही कहा है, "इङ्गलैण्ड ने भारत पर मुक्त व्यापार की नीति लाद कर भारत के प्रति बड़ा अन्याय किया है। यह नीति इङ्गलैण्ड के लिए आहार की तरह पोषक सिद्ध हुई होगी, किन्तु भारत के लिए तो वह जहर-सी साबित हुई है।"[1] इस तथ्य को आज आम तौर से स्वीकार किया जा रहा है और कम आयात और अधिक निर्यात पर बल दिया जा रहा है। इस तरह गांधी जी की स्वदेशी की भावना सिर्फ विदेशी माल का बहिष्कार-मात्र नहीं है। यह एक सार्वभौम नीति है, स्वधर्म का देश के क्षेत्र में विस्तार है और हर देश-काल में स्वधर्म, स्वदेशी, पड़ोसी की सेवा के लिए, पड़ोसी के रोजगार के लिए कष्ट उठाना व मरना श्रेयस्कर है और परदेश की ओर मुँह ताकना, निर्भर रहना भयावह है।

गांधी जी के राष्ट्रीय पुनर्रचना के कार्यक्रम का सब से महत्वपूर्ण नहीं तो बहुत महत्वपूर्ण अंग उनका हाथ-कताई और हाथ-बुनाई का आन्दोलन था जिसमें उन्हें गाँव के—जिनसे कि हमारा देश बना है—आर्थिक, सामाजिक और सांस्कृतिक जीवन के पुनरुद्धार के दर्शन होते थे। गांधी जी ने खादी के माध्यम से आर्थिक जीवन को परिपक्व बनाने का विचार रखा। इसके विपरीत, बहुतों की आज की यही गलत कल्पना है कि खादी आन्दोलन का राजनीति के सिवा और कोई दूसरा हेतु नहीं था। उनकी राय में यह ब्रिटिश साम्राज्य की जड़ काटने का उनका अहिंसात्मक तरीका है। इसलिए वे दलील देते हैं—अब तो ब्रिटेन से हमने अपनी राजनीतिक स्वतंत्रता ले ली है, अब खादी की जरूरत नहीं रही।

अगर गांधी जी के खादी-आन्दोलन का यही अर्थ होता तो कोई कारण नहीं था कि वे केवल खादी पर ही जोर देते और मिल के कपड़े पर न देते। मिलों की सहायता से भी कपड़ा तैयार करके हम अपनी जरूरत का तमाम कपड़ा कहीं जल्दी तैयार कर सकते थे और राजनीतिक आजादी जल्दी प्राप्त कर लेते। फिर गांधी जी सिर्फ ब्रिटिश कपड़े के बहिष्कार की ही नहीं, तमाम विदेशी अर्थनीति के बहिष्कार की बात करते थे जो कि स्वदेशी की व्याख्या से स्पष्ट है। इन सब बातों से यह स्पष्ट है कि वे खादी-आन्दोलन का लक्ष्य ब्रिटिश राज्य को हटाने का साधन मात्र नहीं मानते थे, बल्कि हमारी जनता को आर्थिक दृष्टि से स्वावलम्बी बनाना मानते थे। वे चाहते थे कि हाथ-कताई द्वारा लोगों की जड़ता और लाचारी की भावना दूर हो जाये और वे अपनी आय पर निर्भर रहना सीखें। यह मिल के कपड़े तैयार करने से नहीं हो सकता था, क्योंकि मिल के उत्पादन में काम करने वाला आत्म-निर्भर नहीं हो सकता है, क्योंकि वह मजदूरी, कच्चे

---

१. स्वदेशी और ग्रामोद्योग

माल, मशीन आदि के लिए मालिक पर निर्भर रहता है। खादी का महत्व केवल आर्थिक ही नहीं, वल्कि सांस्कृतिक और मनोवैज्ञानिक भी है। उसका हेतु व्यक्ति में नवजीवन का संचार करना और उसे सूझ-वूझवाला और स्वावलम्वी वनाना है।

दूसरे भारत-जैसे देश में जहाँ लोग हाथ की मेहनत करने से कतराते हैं और उसे नीचा समझते हैं, गांधी जी ने महसूस किया कि जव हाथ-कताई सार्वत्रिक हो जायगी तो वह छोटे-वड़े सभी को शरीर-श्रम का गौरव सिखा देगी।

फिर गांधी जी अच्छी तरह समझते थे कि उद्योगवाद में कच्चे माल और मंडियों की जरूरत होती है और जिससे साम्राज्यवाद, अंतराष्ट्रीय झगड़ों और युद्धों का जन्म होता है। इसके विपरीत खादी प्राचीन "आत्म-निर्भर" ग्रामीण अर्थव्यवस्था का पुनरुद्धार करने का एक प्रयत्न है, जिसमें उत्पादन मुख्यत: गाँव की आवश्यकताओं तक ही सीमित रहेगा। इन्हीं महत्वपूर्ण आर्थिक, सामाजिक और सांस्कृतिक कारणों से खादी आन्दोलन कायम किया गया था। खादी के सम्वन्ध में गांधी जी ने लिखा है, "अगर वड़ी-वड़ी मशीनों से भारत की दरिद्रता और उससे पैदा होने वाली वेकारी दूर हो सकती है तो मैं उनके उपयोग की हिमायत करूँगा। मैंने सुझाया है कि हाथ-कताई ही एकमात्र ऐसा साधन हमारे हाथ में है जिससे गरीवी को भगाया जा सकता है और काम तथा वन का अकाल असम्भव वनाया जा सकता है। चरखा एक उपयोगी मशीन है और अपने नम्र तरीके से मैंने भारत की विशेष परिस्थिति के अनुसार उसमें सुधार करने कोशिश की है।"[1]

इस प्रकार हम देखते हैं कि खादी भारत की गरीव जनता को राहत, रोजगार देने के साधन के रूप में आयी। यहाँ सवाल उठता है कि खादी-कताई स्वतंत्र पेशे के रूप में काम आ सकती है या नहीं। वैसे वुनाई स्वतंत्र पेशे के रूप में काम आ सकती है। कताई को सहायक उद्योग, वस्त्र-स्वावलम्वन की दृष्टि से ही चलाना उचित मानना चाहिए। इस सम्वन्ध में गांधी जी ने लिखा है, "जैसे घर पर भोजन वनाना महँगा नहीं होता और उसका स्थान होटल का खाना नहीं ले सकता, वैसे ही घर पर सूत कात लेना और कपड़ा वुन लेना भी महँगा नहीं पड़ सकता। हमारी आवादी के २५ करोड़ से अधिक लोग अपने ही हाथों से कातेंगे और इस तरह तैयार हुए सूत का आसपास के स्थानों में कपड़ा वुनवा लेंगे। यह आवादी जमीन के साथ वँधी हुई है और उससे साल भर में कम

१. गांधी जी, उद्धृत, खादी क्यों और कैसे, पृ० ३, नवजीवन प्रकाशन मन्दिर, अहमदावाद, १९५७।

से कम चार माह बेकार रहना पड़ता है। अगर ये लोग ऐसे समय में कातें और उस सूत का कपड़ा बनवा कर पहनें तो उनकी खादी के साथ कोई मिल का कपड़ा स्पर्धा नहीं कर सकता। इस तरह तैयार किया हुआ कपड़ा उनके लिए सस्ते से सस्ता होगा।"[1]

खादी के सम्बन्ध में गांधी जी ने बहुत-कुछ लिखा है। उसे आगे भी बढ़ाया जा सकता है, परन्तु अन्य विचारों को हम यहाँ छोड़ कर खादी की वर्तमान समस्याओं पर थोड़ा दृष्टिपात कर सकते हैं। स्वतन्त्रता-प्राप्ति के बाद खादी के काम को सरकार ने देश की योजना के साथ एक-रस तो नहीं किया, परन्तु खादी समाप्त न हो जाय इसलिए कुछ आर्थिक सहायता की योजना अवश्य बनायी। यही कारण है कि खादी आज उस रूप में नहीं है जैसा गांधी जी चाहते थे। आज खादी एक व्यापार हो गया है। हाँ, उससे गरीबों को थोड़ी रोजी जरूर मिली है। परन्तु खादी अपना लक्ष्य व स्वावलम्बन न साध सकी। हम कह सकते हैं कि खादी आज जबरदस्ती चलायी जा रही है, चल नहीं रही है। पर हमें यहाँ यह भी स्वीकार करना चाहिए कि भारतीय अर्थ-रचना में खादी ग्रामोद्योग अविभाज्य अंग के रूप में रहेगा, तभी राष्ट्र का कल्याण है।

इन दिनों खादी की तकनीक में सुधार हुए हैं, विचार में भी सुधार हुए हैं। पर यह सुधार संतोषजनक नहीं माना जा सकता, क्योंकि खादी की तकनीक आज जिस स्थिति में है उसमें वह ग्रामीण जनता में सहजता से नहीं पहुँच सकी है। इसमें अनेक तकनीकी उलझनें सामने आती हैं। यहाँ तकनीकी विकास का मुख्य मतलब अम्बर चरखे का विकास, बुनाई के साधन व तरीकों में सुधार से है। अम्बर वास्तव में इस क्षेत्र में अच्छी देन है। इससे साधारण व्यक्ति अपनी जीविका भी चला सकता है। एक दिन की कताई से एक साधारण शिक्षित व्यक्ति जो अंबर के तकनीकी ज्ञान से परिचित है, वह दिन भर में २ से ३ रुपया तक आसानी से कमा सकता है। परन्तु यहाँ सवाल है अम्बर के जनजीवन में सफलता का। अभी तक के अनुभवों से हम कह सकते हैं कि जहाँ अम्बर का उचित प्रशिक्षण मिला और उसमें लगे तकनीकी सामानों की पूर्ति की अच्छी व्यवस्था की गयी, वहाँ अम्बर चलने में सफलता मिली है। परन्तु ज्यादातर स्थानों में उचित शिक्षण एवं साधनों की पूर्ति की उचित व्यवस्था न होने के कारण असंतोष हाथ लगता है। अंततः हम कह सकते हैं कि अम्बर भविष्य में तकनीकी विकास एवं शिक्षण से सफलता प्राप्त कर सकता है।

---

१. वही, पृष्ठ ३, यंग इण्डिया, ८–१२–२१।

जहाँ तक करघे का सवाल है, तकनीकी क्षेत्र में कोई सन्तोपजनक सुधार नहीं हुआ है। सामान्य बुनकर प्रायः अपने पुराने करघों पर ही बुनाई करते हैं।

इस क्षेत्र में हमारा निष्कर्प होना चाहिए कि खादी का यदि उचित विकास किया गया तो वह भारतीय अर्थ-रचना को सुखदायी फल दे सकती है। परन्तु इधर १५ वर्षों से खादी की प्रगति को देखते हुए हम यह कह सकते हैं कि भारतीय नियोजन में खादी की कोई महत्व की भूमिका नहीं रही है। अगर खादी की यही दशा रही और मिल के कपड़ों के साथ स्पर्धा करती रही तो यह निश्चित रूप से समाप्त हो जायगी। वास्तव में खादी एवं मिल के कपड़े में प्रतिस्पर्धा का कोई सवाल ही नहीं उठता है। दोनों साथ चल सकते हैं। खादी को बचाने का एक ही तरीका है कि खादी जनता में फैले और जो खादी पहने वह अवश्य काते और जो काते वह अवश्य पहने। खादी कृषि का पूरक बन कर रह सकती है। खादी मिल के साथ ठीक उसी प्रकार चल सकती है जिस प्रकार होटल एवं घर की रसोई दोनों चल रहे हैं। पर होटल कभी भी घर की रसोई का स्थान नहीं ले सकता है। इस क्षेत्र में खादी कमीशन के इधर के निर्णय से पता चलता है कि कुछ प्रयास चल रहा है। मुफ्त बुनाई की योजना एवं त्रिविध कार्यक्रम की योजना का प्रयास किया जा रहा है। श्री विनोबा जी ने कहा है कि इसे खादी को बचाने का अंतिम प्रयास माना चाहिए। वास्तव में यदि खादी को बचाना है तो उसे संपूर्ण योजना में महत्वपूर्ण स्थान देना होगा और योजना की दृष्टि में भी परिवर्तन करना पड़ेगा।

पाँचवाँ अध्याय

भारत में ग्रामोद्योग के विकास की समस्यायें

खादी, ग्रामोद्योग एवं अन्य छोटे उद्योगों के मामले में भारत में जो भी प्रयास हुए हैं, उनका संतोषजनक फल नहीं मिला है। 'खादी एवैल्यूएशन कमिटी' १६६० की रिपोर्ट के अनुसार देश में खादी का विकास उस रूप में न हो सका है, जिस रूप में आशा की गयी थी। हम ऐसा कह सकते हैं कि आज खादी चलायी जा रही है न कि स्वयं चल रही है। और जो चीज चलायी जाती है, स्वयं चलती नहीं, उसे बराबर धक्का देने की जरूरत होती है, स्थायी नहीं होती। खादी आज न तो अपने मूल उद्देश्य—स्वावलम्बी, स्वाश्रयी—में ही सफल हो पायी है और न ही वह बाजारू प्रतिस्पर्धा में ही टिक पा रही है। यही हाल अन्य ग्रामीण एवं कुटीर-उद्योगों का कमोवेश है। इस बारे में साधारण शिकायत है कि इसकी वस्तुएँ महँगी मिलती हैं। योजना-काल में इस क्षेत्र में काम करने के लिए अनेक अखिल भारतीय संस्थाएँ बनी हैं और इनके माध्यम से विकास के प्रयास भी किये गये हैं। परन्तु ऐसा देखा गया है कि खादी ग्रामोद्योग, कुटीर एवं छोटे उद्योग साधारणतया सहायता के बल पर चलते हैं। अपवाद उन्हीं के संबन्ध में है जो परंपरागत रूप से चलते आ रहे थे। जो उद्योग नये सिरे से चलाये गये, वे साधारणतया स्वावलंबी न हो सके। यहाँ सवाल उठता है कि भारत-जैसे देश में, जहाँ कि इसकी पूर्ण उपयोगिता स्वीकार की गयी है, ये उद्योग क्यों असफल हो रहे हैं? इनके विकास में कौन-कौन सी बाधाएँ हैं? इस अध्याय में हम उनकी समस्याएं, सुविधाएँ एवं अंत में उनका हल खोजने का प्रयास करेंगे।

समस्याएँ

१. **प्रतिस्पर्धा**—कुटीर एवं ग्रामोद्योग को मुख्यतया दो तरफ से प्रतिस्पर्धा का सामना करना पड़ता है: (१) देशी प्रतिस्पर्धा, (२) विदेशी प्रतिस्पर्धा।

स्वतन्त्रता-प्राप्ति के पूर्व परम्परागत उद्योगों के समाप्त होने का मुख्य कारण विदेशी प्रतिस्पर्धा था। विशेषकर ईस्ट इंडिया कम्पनी और बाद में ब्रिटिश शासन ने अपने देश में बड़े पैमाने पर तैयार माल भर दिया। फलस्वरूप परम्परागत उद्योग स्वयं नष्ट होते गये। परन्तु स्वतन्त्रता-प्राप्ति के बाद भी यह विदेशी प्रतिस्पर्धा न रुक सकी। आज भी सम्पूर्ण अर्थ-व्यवस्था का गहरा सम्बन्ध विदेशों से है। वैसे सरकार धीरे-धीरे नियन्त्रण लगा कर विदेशी माल के आयात को अवश्य रोक रही है। फिर भी प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से ग्रामोद्योग एवं छोटे उद्योग भी विदेशी प्रतिस्पर्धा का कमोवेश शिकार हो जाते हैं।

जहाँ तक देशी प्रतिस्पर्धा का प्रश्न है, यह छोटे उद्योगों के विकास में प्रमुख बाधा है। छोटे उद्योग का हर क्षेत्र इससे प्रभावित है। खादी, हैन्डलूम, तेलघानी, साबुन, कागज, ताड़गुड़, चमड़े का उद्योग, बर्तन, जटा-उद्योग, आदि हर उद्योग प्रतिस्पर्धा के कारण बाज़ार में नहीं टिक पाते हैं। यह कह सकते हैं कि यदि उसे अर्थ-व्यवस्था में कायम रहना है तो प्रतिस्पर्धा में तो टिकना ही पड़ेगा। यहाँ हम यही कहेंगे कि यह सवाल प्रतिस्पर्धा में टिकने का नहीं है। सवाल है राष्ट्र की समस्या को सुलझाने का। जब एक ओर केन्द्रित एवं बड़े उद्योग हैं, जो कि अधिक विकसित हैं, और उनका मूल उद्देश्य अधिकतम लाभ कमाना है, वहाँ ये छोटे परम्परागत उद्योग कैसे टिक सकते हैं? अतः प्रतिस्पर्धा के कारण ग्रामोद्योग आज बाजार में नहीं टिक पा रहा है।

यहीं पर एक सवाल और उठता है। वर्तमान युग में पश्चिमी सभ्यता के प्रवाह के कारण बनावट और फैशन का अधिक बोलबाला है जिसका सम्बन्ध कृत्रिमता से जुड़ जाता है।

आज हर काम में कृत्रिमता है। अतः लोगों की रुचियाँ, पसंद रोज-ब-रोज बदलती रहती हैं। चीजों के गुण एवं लाभदायकता की ओर नहीं जाते हैं। बनावटी एवं फैशन की चीजों की ओर अधिक ध्यान जाता है। परन्तु ग्रामोद्योग एवं छोटे उद्योगों में तैयार माल शुद्ध एवं ठोस होते हैं, कृत्रिम एवं बनावटी नहीं। अतः मनोवैज्ञानिक ढंग से लोग इस ओर कम आकर्षित होते हैं।

२. **तकनीक का पिछड़ापन**—अधिकांश ग्रामोद्योग एवं कुटीर उद्योगों के उत्पादन में लगे उपकरण घटिया किस्म के हैं। परम्परागत उद्योगों में तो वे ही उपकरण हैं जो परम्परागत रूप से चले आ रहे हैं। यहाँ तक खादी उत्पादन में लगे उपकरण भी अधिकांशतया परम्परागत ही हैं। इधर हाल में हुए खोजों के बाद कुछ उद्योगों में नयी तकनीक का विकास हुआ है; परन्तु साधारणतया ये उपकरण अभी भी अपने परम्परागत रूप में हैं।

तकनीक के पिछड़े होने पर प्रत्यक्ष प्रभाव उत्पादन के परिमाण पर पड़ता है। श्रम-शक्ति तो अधिक खर्च होती ही है; साथ ही साथ उत्पादन में कठिनाई भी आती है। उत्पादन का पिछड़ा ढंग होने से शिक्षित लोग उस काम में आना पसन्द नहीं करते हैं। उत्पादन-लागत भी अधिक पड़ती है। इस कारण बाजार में टिकना मुश्किल हो जाता है।

३. **तकनीकी सलाह का अभाव**—लोगों की बदलती जरूरतों और रुचियों के अनुरूप सामान तैयार करने के सम्बन्ध में खोज-अनुसन्धान और फिर डिजाइन आदि तैयार कर कारीगरों को उपलब्ध कराने की समुचित व्यवस्था न होने से इन क्षेत्रों में बनी वस्तुयें पुरानी तरह की मानी जाती हैं, जिनके प्रति उपभोक्ता सहज आकर्षित नहीं होता।

४. **पूंजी की कमी**—भारत में प्रतिव्यक्ति पूंजी बहुत कम है। फिर जो लोग परम्परागत उद्योग में लगे हैं, उनके पास स्थायी पूंजी के नाम पर उत्पादन के उपकरण-मात्र हैं। वे दिन भर में जो उत्पादन करते हैं, शाम को उसे बेच कर अपना पेट भरते हैं। कुछ उद्योगों की तो यह स्थिति है कि उत्पादन के साधन—उपकरण आदि—बेच कर अपना पेट भरते हैं। इतनी कम पूंजी होने के कारण न तो उन्हें उस काम में रुचि होती है और न उज्ज्वल भविष्य की आशा ही। यदि हम चमड़े का उद्योग, जुलाहे, कुम्हार, बढ़ईगीरी आदि का अध्ययन गाँवों में जाकर करें तो पता चलेगा कि वे धीरे-धीरे अपना काम छोड़ रहे हैं और उस उद्योग में पूंजी के नाम पर कोई चीज नहीं रह गयी है। हम कह सकते हैं कि परम्परागत ग्रामोद्योग एवं कुटीर-उद्योग में पूंजी नाममात्र की है और उस पूंजी के आधार पर उसके विकास की आशा नहीं की जा सकती है।

५. **कच्चे माल की समस्या**—कहा जाता है कि ग्रामोद्योग एवं छोटे उद्योग क्षेत्रीय कच्चे माल के आधार पर चलने चाहिए। परन्तु हम देखेंगे कि इन उद्योगों के लिए कच्चा माल एक समस्या हो गया है। जो कच्चा माल पैदा होता है, वह बड़े पूंजीपतियों द्वारा संगठित रूप से खरीद लिया जाता है और उस क्षेत्र के किसानों के पास अपनी खपत-लायक कच्चा माल भी नहीं बच पाता है। तेल उद्योग को ही लें, सरसों गाँव में पैदा होती है, परन्तु वहाँ के तेल पेरने के लिए सरसों नहीं मिलती। बढ़ई को लकड़ी नहीं मिलती। ऊन नहीं मिलता। रूई के सम्बन्ध में अब यह बात नहीं रह गयी—क्योंकि खादी कमीशन इसकी व्यवस्था करता है। यह कच्चे माल की कमी की समस्या कच्चे माल में कमी के कारण नहीं है, बल्कि माल-पूर्ति की अव्यवस्था के कारण है।

यह अव्यवस्था प्रथम तो, पूंजीपतियों एवं केन्द्रित उत्पादन के कारण उत्पन्न

होती है। जो कच्चा माल उत्पन्न होता है उसे व्यापारी खरीद लेते हैं और यह बड़े पैमाने के उत्पादन में लगता है। फलस्वरूप ग्रामोद्योग एवं कुटीर उद्योग के उत्पादकों को पर्याप्त एवं उचित मूल्य पर कच्चा माल उपलब्ध नहीं हो पाता है। दूसरे, यातायात की पर्याप्त सुविधा न होने के कारण कच्चा माल वाहर से मँगाने में मँहगा पड़ता है।

६. **सामाजिक संगठन**—भारत का जातिवाद एक विकट समस्या है। परम्परा से उत्पादक वर्ग को नीचा माना गया है। ग्रामोद्योग एवं छोटे उद्योगों में परम्परागत उत्पादकों की सामाजिक स्थिति नीची है। उनकी सामाजिक मान्यता भी निम्न कोटि की है। वे ऐसा समझते हैं कि यदि हमें समाज में उचित स्थान पाना है तो सबसे पहले अपने परम्परागत कार्य से छुटकारा पाना है। फलस्वरूप वे स्वयं अपने उद्योग में सुधार की आकांक्षा नहीं रखते और अपने वच्चों को उस उद्योग से दूर रखते हैं। इससे परम्परागत कुशलता का ह्रास होता है। यह प्रक्रिया चमार, जुलाहे, कुम्हार आदि हर क्षेत्र में देखी जा सकती है। अतः जातीय स्तरीकरण आज इन परंपरागत उद्योगों के विकास में काफी वड़ी वाधा है। दूसरे जाति के लोग इन परम्परागत उद्योगों में तभी आयेंगे जवकि पर्याप्त आर्थिक लाभ हो।

७. **कृषि एवं उद्योग में समन्वय की समस्या**—भारत-जैसी खेतिहर सभ्यता वाले समाज के लिए आवश्यक है कि कृषि-उद्योग साथ-साथ चले। कृषि के कार्य में साल भर पूरा समय काम नहीं मिलता है। यही हाल ग्रामीण उद्योगों में भी है। परम्परागत रूप से चलने वाले अनेक उद्योग मौसमी होते हैं। फिर कृषि एवं गोपालन तो परस्पर निर्भर उद्योग हैं। आज स्थिति यह है कि कृषि एवं ग्रामीण उद्योगों में सम्वन्ध टूट-सा गया है और जो सम्वन्ध है भी वह आर्थिक दृष्टि से लाभप्रद नहीं है। दक्षिण भारत में चलने वाले जटा-उद्योग को लें। जटा-उद्योग नारियल, ताड़ एवं अन्य जटायुक्त फलों के उत्पादन से जुड़ जाता है। अतः जटा-उद्योग एवं उसका उत्पादन दोनों साथ चलना चाहिए।

८. **विक्री की समस्या**—ग्रामोद्योग एवं छोटे उद्योग के उत्पादकों की आम शिकायत है कि उनके सामानों की विक्री की उचित व्यवस्था नहीं है। खादी-उत्पादन में तो यह विक्री आज जटिल समस्या है। क्योंकि खादी-उत्पादन पर पर्याप्त जोर दिया गया है, फलस्वरूप उत्पादन तो हो जाता है, पर उसकी विक्री नहीं हो पाती है। यही हाल अन्य ग्रामोद्योगों का भी है। हैण्डलूम के उत्पादकों की भी यही शिकायत है। विक्री की समस्या का सम्वन्ध उपभोक्ता की रुचि एवं पसन्द से जुड़ जाता है। विक्री के लिए सहकारी ढंग से प्रयास किये गये हैं।

लेकिन वे संतोषजनक ढंग से सफल न हो सके। हाँ, कुछ बाजारू क्षेत्र में सफलता अवश्य मिली है। पर जहाँ तक साधारण जनता का सवाल है, वह इसके उपभोग की ओर आकर्षित नहीं हो सकी।

ये कुछ मूल समस्याएँ हैं। इन समस्याओं को ध्यान में रखकर ही परिस्थिति का अंदाज लगाया जा सकता है। अब यह देखना है कि भारत में इन उद्योगों के विकास की क्या सुविधाएँ हैं।

सुविधाएँ

१. **विकेन्द्रित ग्रामीण व्यवस्था का होना**—भारत लगभग ५ लाख गाँवों में बिखरा है। इसकी ८२ प्रतिशत आबादी इन्हीं गाँवों में बसती है और करीब ७२ प्रतिशत आबादी कृषि पर निर्भर करती है। कृषि पर इतनी निर्भरता अन्य देशों में नहीं है। इस बिखरी ग्रामीण व्यवस्था में उद्योगों के विकास भी विकेन्द्रित उद्योगों से ही सम्भव हैं। हमने देखा कि गाँवों को न तो नष्ट किया जा सकता है और न उनकी आबादी को शहरों में ही खदेड़ा जा सकता है। गांधीजी के अनुसार उन्हें उनके घरों में ही काम देना होगा। अतः ५ लाख गाँवों का औद्योगीकरण या वहाँ उद्योगों का विकास करना एक भारी समस्या है। ऐसी स्थिति में हमें ऐसी नीति एवं व्यवहार को अपनाना पड़ेगा जिसमें उद्योग ५ लाख गाँवों में बिखरें। क्योंकि हर गाँव में बेकार लोग हैं, और उन्हें वहाँ से स्थायी रूप में हटाना सम्भव नहीं है, न ही सभी को कृषि में लगाना लाभप्रद एवं संभव है। इसलिए उन्हें उनके गाँव-घरों में ही कृषि के अलावा काम देना होगा। कृषि के अलावा यह काम ग्रामीण उद्योग ही हो सकते हैं। ये अपने उद्योग क्षेत्र-विशेष के अनुसार अपने-अपने ढंग के होंगे।

विकेन्द्रित ग्रामीण व्यवस्था होने के कारण एक यह भी सुविधा हो सकती है कि जिस क्षेत्र में जिस ढंग के उद्योग चलें वहाँ उस ढंग का कच्चा माल भी पर्याप्त मात्रा में उत्पन्न किया जाय। अतः कच्चे माल की सुविधा हो सकती है। जैसे दक्षिण भारत में जटा उद्योग है। वहाँ जटा विकेन्द्रित रूप से सुलभ हो सकती और वहाँ यह उद्योग आसानी से फैल सकता है। फिर कुछ मूलभूत उद्योगों के लिए कच्चे माल का उत्पादन भी किया जा सकता है, जैसे कपड़े के लिए कपास।

२. **श्रम-शक्ति का आधिक्य**—ग्रामीण एवं छोटे उद्योगों को बढ़ाने के पक्ष में सबसे बड़ा तर्क यही दिया जाता है कि भारत में श्रम-शक्ति एक समस्या है। अगर बेकारी को रोकना है तो काम देने की व्यवस्था की जाए और इतने

लोगों को काम देना बड़े पैमाने के केन्द्रित उद्योग के बस की बात नहीं है। उससे तो और भी बेकारी बढ़ती है। परन्तु केवल श्रम-शक्ति का उपयोग ही लक्ष्य नहीं हो सकता है। उत्पादन इस ढङ्ग का हो जिससे सबको काम मिले और उत्पादन से इतना फल मिले जिससे सब का पेट भर सके।

३. पूंजी की कमी—बड़े पैमाने के केन्द्रित उत्पादन में अत्यधिक पूंजी की आवश्यकता होती है। परन्तु भारत में प्रति व्यक्ति पूंजी की मात्रा अत्यधिक कम है। संयुक्त राज्य अमेरीका में प्रति व्यक्ति पूंजी करीब २० हजार रुपये के लगभग है जबकि भारत में ४०० से भी कम। ऐसी स्थिति में भारत में उस ढङ्ग का औद्योगीकरण सम्भव नहीं, जिस ढङ्ग से योरप एवं अमेरिका में हो रहा है। हम पूर्ण रूप से विदेशी पूंजी पर औद्योगीकरण नहीं कर सकते हैं। अतः कोई ऐसा तरीका निकालना होगा जिसमें अत्यधिक कम पूंजी से ही उद्योगों का एवं औद्योगिक उपकरणों का उपयोग हो, जिसकी पूंजीगत लागत कम हो। इस प्रकार के उद्योग ग्रामीण छोटे एवं वैज्ञानिक ढङ्ग से विकसित हो सकते हैं। परन्तु आज प्रति व्यक्ति जितनी पूंजी है, उतने में औद्योगीकरण सम्भव नहीं बताया जा सकता है। इसलिए उद्योगों के विकास के लिए जरूरी है कि बाहर से आर्थिक सहायता दी जाय।

४. विशेष प्रकार की समाज-रचना—भारत गाँव में बसा है और इसकी अपनी ग्रामीण सभ्यता एवं संस्कृति है। भारतीय समाज के मूल में परिवार एवं गाँव है। इस समाज-व्यवस्था में वही आर्थिक ढाँचा ठीक ढङ्ग से चल सकता है, जो कि परिवार एवं गाँव की व्यवस्था के अनुरूप हो। गाँव का अशिक्षित एवं पिछड़ा समाज वही व्यवस्था स्वीकार कर सकेगा जो कि उसके अनुरूप होगा।

समस्या का हल—ग्रामीण एवं छोटे उद्योगों की समस्याओं के समाधान करने के लिए उन बाधाओं को समाप्त करना होगा जो कि इसके विकास के मार्ग में बाधक हैं। पर एक बात स्पष्ट कर देने की है। वह यह कि ग्रामीण एवं छोटे उद्योग तभी पूर्ण रूप से सफल हो सकते हैं, जबकि पूरी अर्थव्यवस्था उसके अनुरूप हो। छिटपुट रूप से एवं तात्कालिक रूप से समस्या का समाधान ढूंढ़ने एवं सहायता देने से उसकी समस्याएँ स्थायी रूप से नहीं सुधर सकती हैं। यदि ग्रामीण एवं छोटे उद्योगों को स्थायी रूप से कायम करना है तो पूरी अर्थव्यवस्था को उसके अनुरूप बनाना होगा, फिर भी चूंकि तात्कालिक एवं आंशिक रूप से समस्या को सुलझाने का ही प्रयास किया जाता है, अतः उसी संदर्भ में विचार करना श्रेयस्कर होगा।

इन उद्योगों के विकास में मुख्य समस्या प्रतिस्पर्धा से मुकाबला की है। पिछले अनुभवों से हम कह समते हैं कि आंशिक वार्षिक सहायता देकर हम प्रतिस्पर्धा

का मुकाबला नहीं कर सकते हैं। प्रतिद्वंद्वी इतना मजबूत है और जनमानस—उपभोक्ता—भी इस ढंग का है कि यह उसके सामने नहीं टिक पा रहे हैं। अतः किसी अन्य तरीकों से प्रतिस्पर्धा रोकी जानी चाहिए। इस सम्बन्ध में एक यह सुझाव दिया जा सकता है कि कम से कम कुछ उद्योगों के क्षेत्र में प्रतिस्पर्धा से रक्षा की जानी चाहिए। अर्थात्, कुछ उद्योगों में ग्रामीण एवं छोटे उद्योगों को ही कायम करना चाहिए और बड़े एवं केन्द्रित उत्पादन को उतना ही करने की अनुमति दी जाय जितना की छोटे उद्योगों से न हो सके। फिर धीरे-धीरे ऐसी स्थिति कायम करनी चाहिए जिससे ये उद्योग बिना संरक्षण के ही स्वयं चलते रहें।

यह समस्या बिक्री की समस्या से जुड़ी हुई है। प्रतिस्पर्धा एवं बिक्री दोनों को साथ-साथ तो चलना चाहिए। एक ओर प्रतिस्पर्धा को तो रोका जाना जरूरी है ही, साथ-ही-साथ वस्तु का क्षेत्रीय एवं स्थायी बाजार भी कायम करने का प्रयास करना चाहिए। इसके लिए क्षेत्रीय उत्पादन पर बल देना चाहिए। जिस क्षेत्र में वस्तु का निर्माण हो, वहीं बिक्री भी हो जाए। बिक्री की व्यवस्था के लिए सामूहिक प्रयास भी हो सकते हैं। उत्पादन व्यक्तिगत भी हो, परन्तु उसकी बिक्री सहकारिता के ढङ्ग से की जा सकती है। इस सहकारी बिक्री में अनेक व्यावहारिक कठिनाइयाँ आ सकती हैं, जो व्यक्तिगत स्वार्थ के कारण उपजती हैं, इसलिए जहाँ जैसी सुविधा हो वहाँ वैसी व्यवस्था की जा सकती है।

जहाँ तक लागत का सम्बन्ध है, वह उत्पादन के तकनीक से जुड़ जाता है। उत्पादन का तकनीक जिस ढङ्ग का होगा, उत्पादन क्षमता और अन्ततः उत्पादन लागत भी उसी प्रकार होगी। उत्पादन लागत कम करने के लिए अच्छी तकनीक का उपयोग आवश्यक है। इस क्षेत्र में अभी प्रयास पूर्णतया लभ्य नहीं है। कुछ क्षेत्रों में इस सम्बन्ध में अच्छा विकास हुआ। खादी के क्षेत्र में अंबर चरखे का विकास हुआ। प्रारम्भ में तो अंबर का प्रसार कुछ तकनीकी कमियों के कारण पर्याप्त न हो सका, परन्तु आज का विकसित अंबर काफी उपयोगी सिद्ध हो रहा है। अंबर का नया माडल काफी सफल हो रहा है। उसी प्रकार तेलघानी, धान-कुटाई, साबुन-उद्योग, आदि में तकनीकी सुधार भी सराहनीय है। फिर भी जहाँ तक तकनीकी सुधार के प्रसार का सवाल है, वह संतोषजनक नहीं है। जो भी तकनीकी सुधार किये गये हैं, व्यवस्था एवं गठन की खामियों के कारण पूरी तौर पर फैल नहीं पा रहे हैं।

साथ ही आम लोगों की परिष्कृत रुचि के बारे में खोज-अनुसन्धान करने के लिये कोई व्यवस्था बहुत लाभप्रद हो सकती है। हमारे यहाँ ऐसी व्यवस्था व्यक्तिगत आधार पर सम्भव नहीं। इसलिये सरकारी तौर पर अथवा सहकारी

आधार पर ऐसी व्यवस्था हितकारी हो सकती है। इसके अन्तर्गत परिष्कृत रुचि के अनुरूप सामान तैयार करने के लिये अनुसन्धान के साथ ही मौजूदा उत्पादन की डिजायन आदि में सुधार के लिये भी अनुसन्धान जारी रहना चाहिये और इसकी जानकारी उत्पादन के काम में लगे लोगों को सहज उपलब्ध होनी चाहिये।

देश में अभी भी कुछ उद्योगों में ऐसी व्यवस्था है, लेकिन लगता है कि छोटे उद्योगों पर उसका प्रभाव नगण्य है।

१९६० में खादी के विकास पर अध्ययन के लिए वनी कमेटी ने विकास के लिए निम्नलिखित सुझाव दिये थे—

१. संपूर्ण योजना विकेन्द्रित एवं सहकारिता पर आधारित होनी चाहिए।

२. कुछ निश्चित क्षेत्रों में सघन रूप में कार्य किया जाए।

३. अर्थव्यवस्था में पर्याप्त स्थान दिया जाए।

४. क्षेत्रीय नेतागीरी को समाप्त किया जाए।

सुझाव के अनुसार अनेक क्षेत्रों में चुनिंदा क्षेत्र के रूप में वहाँ सघन रूप में काम किया जा रहा है। इस तरह के सघन रूप में काम होने वाले इलाकों में गया जिला (विहार) भी है। गया जिले में नवादा, कोआकोल, वारसली गंज आदि क्षेत्रों में सघन रूप से काम किया गया है।[1] इस सम्वन्ध में श्री वैकुंठ लाल मेहता लिखते हैं, "आशा है अव विना किसी प्रकार का विलम्व किये इस तरह का आयोजन किया जाएगा ताकि देश भर में वैसा करने की होड़ लग जाने का वह आदर्श वने, उससे यही वात सामने आ जाय कि 'नीचे से निर्माण' किस प्रकार प्रभावोत्पादक हो सकता है और 'लोक-आयोजन' का ग्रामीण भारत पर कैसा प्रभाव पड़ सकता है।"[2]

कुछ सघन क्षेत्रों में जो प्रयास किये जा रहे हैं उनमें सफलता अवश्य मिली है। पर वहाँ भी वही समस्याएँ सामने आती हैं जो कि सम्पूर्ण आर्थिक ढाँचे से जुड़ी हुई हैं। ग्रामीण औद्योगीकरण को स्थायी वनाने की समस्या है।

फिर एक वात यह भी कही जाती है कि वाहरी पैसे से किसी विशेष क्षेत्र में कव तक विकास किया जा सकता है? ऐसा कितने क्षेत्रों में किया जा सकता है? क्या पूरे देश पर उतना खर्च करना संभव है जितना विशेष क्षेत्र में किया जाता

---

१. रिपोर्ट आफ खादी इवाल्यूशन कमिटी, १९६०।

२. वैकुंठ लाल मेहता, 'ग्रामीण औद्योगीकरण की समस्यायें,' खादी ग्रामोद्योग, खादी कमीशन, वम्वई, मई, १९६४, पृष्ठ ५२३।

है ? ये कुछ सवाल हैं जिनको ध्यान में रखकर ही सघन काम को करना चाहिए। यहाँ एक सुझाव दिया जा सकता है कि जिस क्षेत्र में सघन काम किया जाए, धन व्यय किया जाए, वहाँ की योजना इस ढङ्ग से बने कि कुछ वर्षों के बाद वह क्षेत्र पूर्ण रूप से स्वावलंबी हो जाए, फिर उसे बाहरी आर्थिक सहायता की जरूरत न पड़े। इसके लिए स्थायी बाजार आदि पर भी विचार करना होगा। इस प्रकार एक के बाद एक चुनिंदा क्षेत्रों का विस्तार किया जा सकता है। सिद्धान्ततः यह चलता रहता है, लेकिन व्यवहार में क्षेत्रीय नेतृत्व, अशिक्षा एवं अन्य आर्थिक सामाजिक समस्याओं के कारण अनेक कठिनाइयाँ सामने आ जाती हैं।

इस सम्बन्ध में एक बात यह कही जा सकती है कि इस क्षेत्र में एक तो, शिक्षित युवकों को उत्पादन-काम में आना चाहिए। दूसरे, इन कार्यों से इतना लाभ हो जिससे लोग उस काम में आना चाहें।

अन्त में हम यह कह सकते हैं कि ग्रामोद्योग एवं कुटीर उद्योगों के विकास के लिए पूरी अर्थव्यवस्था को उसी के अनुरूप बनाना चाहिए। इसके बीच का मध्यम मार्ग भी अपनाया जा सकता है—

१. ग्रामोद्योगों को बड़े उद्योगों की प्रतिस्पर्धा से बचाया जाय। कम से कम कुछ उद्योगों को पूर्ण संरक्षण दिया जाए। बाजार की व्यवस्था हो।

२. उपभोक्ता में रुचि पैदा की जाए।

३. वैज्ञानिक तकनीकों का विस्तार हो।

४. कुछ चुनिंदा क्षेत्रों में सघन काम किये जायँ जिससे कुछ समय बाद वह क्षेत्र स्वावलंबी हो जाए।

५. शिक्षित लोगों को इस काम में लगाया जाए।

६. कृषि-उद्योग का वैज्ञानिक ढङ्ग से समन्वय किया जाए।

७. स्थानीय बाजार का निर्माण हो, और कच्चे माल की उपलब्धि भी नहीं की जाए।

छठा अध्याय

भारत एवं टेकनालाजी : मध्यम टेकनालाजी विचारधारा का विकास

तीसरे अध्याय में हमने देखा कि देश, काल एवं परिस्थिति के अनुसार तकनीक के विकास में भी भेद होना स्वाभाविक होता है। फिर तकनीक का समाज को विभिन्न संस्थाओं पर प्रत्यक्ष एवं अप्रत्यक्ष रूप से प्रभाव पड़ता है। अंततः तकनीक का सम्बन्ध सभ्यता, संस्कृति से जुड़ जाता है। वैसे, जैसा कि हमने देखा, मशीन स्वयं में कोई स्थान नहीं रखती, परन्तु जिस संदर्भ में, जिस समस्या एवं परिस्थिति में उसका विकास होता है, अगर हम उसे उससे भिन्न परिस्थिति एवं समस्या वाले स्थान में उपयोग में लायें तो वह मशीन अपना प्रभाव अवश्य डालेगी। हमने यह भी देखा है कि पश्चिमी टेकनीक अपनी विशेष परिस्थिति एवं समस्या के संदर्भ में विकसित हुई और उसके विकसित होने और विश्व पर छा जाने की भी एक कहानी है। अब यहाँ सवाल यह उठता है कि भारत जैसे विशेष परिस्थिति एवं समस्या वाले देश में तकनीक का विकास कैसा हो? अगर हम पश्चिमी देश के बड़े पैमाने के तकनीक को अस्वीकार करने की बात करते हैं तो उसका विकल्प भी सुझाना होगा। यह विकल्प क्या है? क्या प्राचीन पिछड़े ढङ्ग की उत्पादन-पद्धति एवं तकनीक इसका विकल्प है? हम कहेंगे, नहीं। प्राचीन, पिछड़े उत्पादन की तकनीक से हम न तो वर्तमान समाज की समस्याएँ ही सुलझा सकते हैं और न ही समाज के लोगों का पेट भर ही सकते हैं। इसका विकल्प हमें प्राचीन तकनीक, भारतीय परिस्थिति के संदर्भ में आधुनिक एवं वैज्ञानिक मस्तिष्क से खोजना होगा। यहाँ हमें प्राचीन रूढ़िग्रस्तता को त्याग कर आधुनिक दिमाग का उपयोग करना होगा। यह विकल्प गांधीजी के विचार में ढूँढ़े जा सकते हैं। जैसा कि हमने देखा कि गांधीजी मशीन के विरोधी नहीं थे, बल्कि उसके पीछे चलने वाले पागलपन के विरोधी थे।

हमने देखा कि गांधीजी कुटीर उद्योगों में प्रत्येक सुधार का स्वागत करते थे। पिछले अध्ययन से स्पष्ट है कि गांधीजी तकनीक के विकास एवं सुधार के विरोधी नहीं थे। इस अध्याय में हम पश्चिम में विकसित बड़े पैमाने के तकनीक के विकल्प के बारे में विचार करने का प्रयास करेंगे। यह विकल्प मध्यम प्रौद्योगिकी होगा, ऐसा मान सकते हैं। परन्तु मध्यम प्रौद्योगिकी भी कोई रूढ़िवादी अर्थ में नहीं अपनायी जानी चाहिए। हमने देखा है कि आज की परस्थिति में बड़े उद्योगों का एक स्थान है, उसकी आवश्यकता है और अब वह स्थायी रूप से बना रहने वाला है। फिर भी भारत जैसे विशाल श्रम-शक्ति के आधिक्य वाले राष्ट्र के लिए मध्यम प्रौद्योगिकी का अपना स्थान है और हमारी मान्यता के अनुसार बिना इसके हम श्रम-शक्ति का न तो पूरा उपयोग ही कर सकते हैं और न ही बेकारी दूर कर सकते हैं। परन्तु मध्यम प्रौद्योगिकी अन्य कारणों से भी उपयोगी है। संक्षेप में, निम्नलिखित कारणों से मध्यम प्रौद्योगिकी का विकास आवश्यक प्रतीत होता है—

१. श्रम शक्ति का आधिक्य एवं पूंजी की कमी। भारत में ५० करोड़ से अधिक लोग बसते हैं। करीब १८ करोड़ या अधिक श्रमशक्ति को काम देना है। फिर अर्ध-बेकारी, मौसमी बेकारी भी काफी मात्रा में है। पूंजी की यह स्थिति है कि भारतीय किसानों के पास पूंजी नहीं के बराबर है। प्रति व्यक्ति औसत पूंजी ३५०) रुपये के करीब है। पूंजी के संदर्भ में पश्चिमी देशों की तुलना करना हास्यास्पद है। अमेरिका में प्रतिव्यक्ति पूंजी २० हजार से भी अधिक है। अतः (१) श्रम-शक्ति का आधिक्य, (२) पूंजी की अत्यधिक कमी के कारण औद्योगिक निर्माण एक विकट समस्या बन गया है। हमने देखा कि पश्चिमी तकनीक का विकास ही अधिक पूंजी, कम श्रमशक्ति, उपनिवेशवाद एवं विदेशी व्यापार के बल पर हुआ है, जब कि भारत को इनमें से एक भी सुविधा प्राप्त नहीं होने वाली है। ऐसी परिस्थिति में हमारी तकनीक भी उससे भिन्न होगी। इसे समझना कोई कठिन नहीं है। पर हम यहाँ स्वीकार करते हैं कि भारतीय नियोजन में इस भारतीय स्थिति की पूर्णतः उपेक्षा की गयी है। हमारा नियोजन पश्चिमी 'माडल' पर आधारित है। यह बाध्य करता है कि मध्यम प्रौद्योगिकी पर विचार किया जाए।

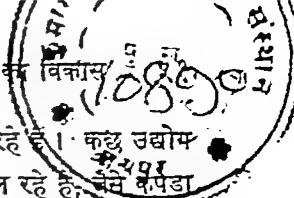
२. दूसरी बात भारत के गांवों से जुड़ी हुई है। गांधी जी ने कहा है, "भारत गांव में बसता है, गांव नष्ट होने का मतलब है भारत का नष्ट हो जाना।" इस घनी आबादी वाले लगभग ५ लाख गांवों का औद्योगिक विकास एक समस्या है। हमने देखा कि इस ग्रामीण आबादी को किसी भी हालत में नगरों में नहीं बसाया जा सकता है। इसे गांवों में अपने घरों में ही काम

देना आवश्यक है। अतः हम अधिक श्रमशक्ति, कम पूंजी एवं गाँवों में वसी घनी आवादी को काम देने के लिए और अंततः आर्थिक विकास के लिए तकनीक को भी उसी के अनुरूप—मध्यम प्रौद्योगिकी—विकसित करना आवश्यक है।

३. मध्यम टेकनालाजी की आवश्यकता के सम्वन्ध में तीसरी वात का संवन्ध भारत की सभ्यता, संस्कृति और जनमानस से है। भारत खेतिहर संस्कृति वाला देश है। इस सभ्यता का विकास भी एक विशेष परिस्थिति में हुआ है। यहाँ की समाज-रचना परिवार एवं गाँव से जुड़ी हुई है। औद्योगीकरण के विकास के कारण यह पारिवारिक सम्वन्ध ढीले अवश्य हो रहे हैं, फिर भी वे समाप्त होने वाले नहीं हैं। आज तक वड़े पैमाने के औद्योगीकरण में लगे लोगों के अध्ययन से पता चलता है कि यहाँ का श्रमिक, नौकरी करने वाला, अंततः गाँव से, अपने परिवार से जुड़ा होता है। वह काम करता है शहर में, अपने गाँव से दूर, परन्तु उसका परिवार रहता है गाँव में। भारतीय जनमानस का विकास इस प्रकार से हुआ है कि उसका गाँव एवं अपने परिवार से सम्वन्ध-विच्छेद करना कठिन कार्य है। परिवार का ढाँचा है और इस ढाँचे में आर्थिक, सामाजिक तत्व जुड़े हुए हैं। प्राचीन काल से ही भारतीय अर्थ-रचना एवं समाज-व्यवस्था परिवार के सम्वन्धों पर आधारित है। आज अगर परिस्थिति यह है कि गाँव नहीं समाप्त किये जा सकते हैं तो परिवार की व्यवस्था को ही कायम रखना अनिवार्य है। विना परिवार के गाँव की सुन्दर व्यवस्था सम्भव नहीं। परिवार-विच्छेद और गाँव की आपसी फूट के परिणाम विघटित गाँवों में देखे जा सकते हैं। अतः पारिवारिक एवं ग्रामीण अर्थ-रचना के लिए ऐसी प्रौद्योगिकी का विकास जरूरी है जो परिवार और गाँव की पूंजी से चल सके। यह प्रौद्योगिकी वड़े पैमाने की नहीं हो सकती है।

इन सव कारणों के अध्ययन से स्पष्ट है कि मध्यम प्रौद्योगिकी आज की आवश्यकता हो गयी है। इसका विकास भारत के लिए आवश्यक है।

अव संक्षेप में प्राचीन भारतीय प्रौद्योगिकी के विकास पर विचार कर लेना समीचीन होगा। प्राचीन काल में भारत में गाँव की परिस्थिति में उद्योग और उसकी तकनीक का विकास हुआ था। अगर हम ग्रामीण अर्थ-रचना का अध्ययन करें तो स्पष्ट है कि गाँव में अनेक स्वावलम्वी उद्योग चलते हैं। प्राचीन काल से ही भारत में अनेक उद्योग स्वावलम्वी ढङ्ग से चलते आ रहे हैं, परन्तु आज वे उद्योग अनेक उद्योग स्वावलम्वी ढङ्ग से चलते आ रहे हैं, परन्तु आज वे उद्योग नष्टप्राय हो गये हैं। इनके नष्ट होने का मुख्य कारण इनमें विज्ञान एवं तकनीक का उपयोग न किया जाना और राजनीतिक प्रभाव है। फिर



भी आज अनेक उद्योग अपनी बीमारी की हालत में चल रहे हैं। कुछ उद्योग तो ऐसे हैं जो सारे देश में चलते आ रहे थे, और आज भी चल रहे हैं, जैसे कपड़ा उद्योग, तेल उद्योग, बर्तन उद्योग आदि। कुछ उद्योग क्षेत्रीय ढङ्ग से चलते हैं, जैसे बनारसी साड़ी उद्योग, चूड़ी उद्योग, ऊन उद्योग, मधुमक्खी-पालन आदि। ऐसे अनेक उद्योग हैं जिनका विकास किया जाना आवश्यक है। विदेशी साम्राज्य के आने से जिस साम्राज्यवादी अर्थनीति का विकास किया गया, वह इन सभी उद्योगों को समाप्त करने में सबसे अधिक सहायक बनी। विज्ञान एवं तकनीक पश्चिमी राष्ट्रों में बड़े पैमाने पर आगे बढ़े, परन्तु भारतीय प्राचीन अर्थ-रचना उनसे बिलकुल अछूती रही जिससे वह समाप्ति की ओर तीव्रता से बढ़ी। इस परम्परागत उद्योग एवं तकनीक की कीमत पर पश्चिमी औद्योगीकरण को तीव्रगति से बढ़ाया गया और आज भी बढ़ रहा है। यही कारण है कि आज सब सरकार उन परम्परागत उद्योगों पर सहायता के रूप में कुछ रकम व्यय करती है तो कोई विशेष लाभ नहीं मिल पाता है। सरकार आज तक के प्रयासों से उन परम्परागत उद्योगों को पुनः स्वावलम्बी बनाने में असमर्थ रही है।

इन परिस्थितियों में हम देखते हैं कि भारत में मध्यम प्रौद्योगिकी की विचारधारा को आगे बढ़ाने का थोड़ा प्रयास किया गया है। साधारणतया बड़े पैमाने के केन्द्रित उत्पादन के विरोधी विचारक इस ओर अधिक झुके हैं। इस विचार को सैद्धांतिक रूप में विकसित करने में दो विचारकों के नाम उल्लेखनीय हैं। प्रथम, भारत के प्रोफेसर डी० आर० गाडगिल और दूसरे ब्रिटेन के अर्थशास्त्री श्री ई० एफ० शुमाखेर हैं। इन्होंने मध्यम प्रौद्योगिकी की विचारधारा का सैद्धांतिक विस्तार किया है और भारतीय नियोजन में इसे प्रमुख स्थान देने की सिफारिश की है।

प्रोफेसर डी० आर० गाडगिल भारत की वर्तमान नियोजन की आधारभूत आलोचना करते हैं और कहते हैं कि इसके निर्माण में ही भूल की गयी है। फिर भी वे तकनीक में सुधार भारत की स्थिति के अनुसार करने की सिफारिश करते हैं। मध्यम प्रौद्योगिकी के बारे में प्रोफेसर गाडगिल कहते हैं, "देश में मानवीय श्रम की अतिरिक्तता और श्रम के साधनों की पर्याप्त मात्रा में प्रयुक्त करने की अर्थव्यवस्था की असमर्थता को दृष्टिगत करते हुए मध्यम प्रविधि के अपनाये जाने पर सोचना तर्कसंगत है—राष्ट्रीय साधनों के सक्षम प्रयोग के आयोजन द्वारा राष्ट्रीय आर्थिक उत्पादन को बढ़ाने के प्रयास का ही नाम राष्ट्रीय आर्थिक विकास है। इसलिए उत्तरोत्तर उन्नतिशील प्रविधि का स्वीकार विकास-योजना में अंतर्निहित होता है। तथापि देश के आर्थिक विकास और पूंजी तथा श्रम

की सापेक्ष अपलभ्यता एवं मूल्यों की अव्यवस्था को ध्यान में लेते हुए उपलब्ध अतिउन्नत प्रविधि को सभी दिशाओं में तुरन्त अपनाना न इष्ट होता है, न संभव ही। उन्नत प्रविधि के स्वीकार की समस्या पर सोचें तो भारत में आज मुख्यतः आवश्यकता इसी वात की है कि छोटे पैमाने की उत्पादन-इकाइयों पर तथा विशेषकर देश में जिस किस्म के श्रम की अतिरिक्तता है, उसके सापेक्षतया अधिक प्रयोग पर वल दिया जाये। संसार भर में वहुतांश प्राविधिक अनुसंधान उन्नत औद्योगिक देशों की वर्तमान प्राविधिक तथा आर्थिक स्थितियों को दृष्टिगत करते हुए किया जाता है। हमारे सामने ग्रामीण औद्योगीकरण की विशाल समस्या खड़ी है। उसे हल करने के लिए अधिक समय लगेगा। इसलिये आवश्यकताओं के अनुसार गत्यात्मक मध्यम प्रविधि की प्रगति पर अपने साधन लगा दें।"[1]

प्रोफेसर डी० आर० गाडगिल ने जो कुछ कहा है, वह भारतीय आर्थिक स्थिति से जुड़ा है। भारत में जिस ढङ्ग की श्रमशक्ति है, जिस किस्म की एवं जिस मात्रा में पूंजी देश में उपलब्ध है, उसी के अनुरूप टेकनालाजी का भी विकास हो, तभी देश की गरीव जनता उसे स्वीकार कर सकेगी। कोई भी आर्थिक नियोजन, औद्योगिक विकास तभी वढ़ सकता है जव कि वह उस देश की जनता की स्थिति के अनुकूल हो। अतः श्रमशक्ति एवं पूंजी को देखते हुए नयी प्रविधि का विस्तार किया जाना चाहिए। इस सम्वन्ध में श्री ई० एफ० शुमाखेर के विचार भी विचारणीय हैं। इस सम्वन्ध में श्री शुमाखेर ने कहा है, "किसी भी देश को औद्योगीकरण की वैसी समस्याओं का सामना नहीं करना पड़ा है, जो आज भारत को वेहद ऊंची और साथ-साथ वेहद खर्चीली विदेशी प्रौद्योगिकी की मौजूदगी और आंशिक घुसपैठ की वजह से करना पड़ रहा है। भारत में पहले से ही विशाल तथा वढ़ती जा रही ग्रामीण श्रमशक्ति को लघु उद्योगों के जरिये रोजगारी प्रदान करने के लिए आवश्यक है कि पारम्परिक कारीगरों के 'पाँच रुपये के औजार' तथा आधुनिक उद्योगों की 'पच्चास हजार रुपये की एक मशीन' के वीच की मध्यम प्रौद्योगिक औद्योगिकी का विलकुल नया मार्ग अपनाया जाए। यह प्रौद्योगिकी इतनी सस्ती होनी चाहिए कि अधिकाधिक लोग इसे प्राप्त कर सकें और देश की वचत तथा विदेशी मुद्रा के साधन-स्रोतों पर विना किसी दवाव के व्यापक पैमाने पर उसे प्रयोग में लाया जा सके।"[2]

---

१. डी० आर० गाडगिल, "नोटस् ऑन रूरल इन्डस्ट्रलाइजेशन", अर्थ-विज्ञान, मार्च, १९६४।

२. ई० एफ० शुमाखेर, उद्धृत, मंजेश्वर सदाशिव राव, खादी ग्रामोद्योग अक्टूबर, १९६४, पृ० १२९। रिफ्लेक्शन आन द प्राब्लेम आफ ब्रिगिंग इण्डस्ट्रीजटू रूरल एरियाज, १९६२, योजना आयोग नई दिल्ली।

इस प्रकार श्री शुमाखेर कहते हैं कि यह प्रौद्योगिकी इतनी सस्ती हो कि साधारण जनता उसे कम पूंजी में खरीद सके। वास्तव में यह प्रविधि सस्ती एवं सरल दोनों होनी चाहिए। जब अम्बर चरखा का विकास हुआ तो ग्रामीण जनता उसे भी स्वीकार करने में असमर्थ थी। बाद में प्रशिक्षण एवं सतत् सुधार से आज वह फैल रहा है। अतः हम कह सकते हैं कि भारतीय परिस्थिति में नयी प्रविधि का निर्माण काफी जटिल समस्या है। इस प्रविधि का विकास शिक्षण एवं प्रशिक्षण दोनों के साथ ही हो सकता है। भारतीय जनता के पास पूंजी इतनी कम है कि वैज्ञानिक ऐसा कह सकते हैं कि इतनी कम पूंजी में नयी तकनीक का विकास सम्भव नहीं, पर जब इस कम पूंजी वाली जनता का विकास करना है तो उसी के अनुकूल तकनीक के विकास का भी रास्ता किसी न किसी रूप में बनाना ही होगा।

तकनीक की लागत के बारे में श्री शुमाखेर आगे लिखते हैं, "इस प्रौद्योगिकी के अंतर्गत एक 'कार्यस्थल' जिसमें एक व्यक्ति काम कर सके, की स्थापना में औसतन एक हजार से दो हजार रुपये तक की पूंजी की लागत होगी। इस तरह की प्रौद्योगिकी को विकसित करना इंजीनियरों के लिए कोई कठिन काम नहीं होगा।"[1] वैसे यदि वर्तमान ग्रामीण जनता की प्रतिव्यक्ति पूंजी को देखें तो प्रौद्योगिकी की यह कीमत अधिक है। फिर भी यदि उद्योगों का वैज्ञानिक विकास करना है तो यह खतरा मोल लेना ही होगा। हमें यहां ध्यान में रखना चाहिए कि कि भारतीय आर्थिक विकास भारतीय सामाजिक संस्थाओं—परिवार, गांव आदि—के सहयोग से करने पर ही अपेक्षित सफलता मिल सकती है। अतः नयी प्रविधि को परिस्थिति एवं आवश्यकता के अनुसार परिवार एवं गांव के सहयोग से चलाया जाना चाहिए। ग्रामोद्योग, कुटीर उद्योग, लघु-उद्योग आदि का विकास ग्रामीण समाज की विभिन्न सामाजिक संस्थाओं के सहयोग से ही विकसित हो सकता है। अतः यदि वैज्ञानिक तकनीक को कम पूंजी के अनुरूप गढ़ने का प्रयास करें तो कोई कारण नहीं है कि जनता उसे स्वीकार न करे। यहां एक शंका, इस रूप में भी व्यक्त की जाती है कि यहां की प्रतिव्यक्ति पूंजी इतनी कम है कि कोई प्रविधि का गढ़ना सम्भव नहीं। परन्तु यह तर्क निराधार है, क्योंकि व्यक्तिगत तौर पर यह पूंजी अवश्य कम है, परन्तु परिवार एवं गांव को दृष्टि में रखने पर यह उतनी कम नहीं है जितना कि समझा जाता है।

---

१. ई० एफ० शुमाखेर, वही, पृष्ठ १२९।

इस सम्बन्ध में भी भारतानन्द सूक्ष्म ऊर्जाविज्ञान के विकास की वात करते हैं। उनका मत है कि ऐसी सूक्ष्म प्रौद्योगिकी का विकास किया जाय जिसे परिवार के अन्दर ही उपयोग में लाया जा सके। वे कहते हैं, "अपने काम का प्रथम उद्देश्य होगा परिवार के अन्दर स्वावलंवन, तव गाँव का समाज, फिर पड़ोसी गाँव की सेवा, उसके वाद तालुका, फिर जिला तव किसी खास इलाके में प्राप्त प्राकृतिक साधन और स्थानीय कौशल के विशेष सामर्थ्य से अखिल भारतीय स्तर पर माँगों की पूर्ति।"[1] परन्तु इस सूक्ष्म प्रौद्योगिकी के विकास एवं उपयोग में शक्ति की आवश्यकता होती है। उस शक्ति के वारे में श्री भारतानन्द कहते हैं, "अनेक सूक्ष्म संयंत्रों को उनकी पूरी क्षमता के साथ चलाने का काम हाथ या पशु-शक्ति से नहीं हो सकता। वहाँ यांत्रिक शक्ति की जरूरत पड़ेगी। भारत की कुल विद्युत् शक्यता वहुत ऊँची नहीं है और उसे वढ़ाने का महज एक हीं उपाय है कि वड़े पैमाने पर कीमती अणु-शक्ति का उपयोग किया जाय। राज्य की नीति है कि गाँव का यथाशीघ्र विद्युतीकरण किया जाय, किन्तु जिस गति से गाँव में विजली लगायी जा रही है, वह उत्साहवर्धक नहीं है, इसका हल है 'सूक्ष्म ऊर्जाविज्ञान' जो प्रत्येक गाँव या गाँवों के समूह में शक्ति के अपने स्रोतों का निर्माण करेगा जो डीजल, खाद गैस, वाष्प, जल, वायु तथा सौर ऊर्जा जैसा कुछ होगा। स्रोत चाहे जो भी हो। जव तक प्रत्येक गाँव तक विद्युत् न पहुँच जाय, शक्ति की पूर्ति या सूक्ष्म ऊर्जा सूक्ष्म प्रौद्योगिकी के साथ-साथ चलनी चाहिए।"[2]

यहाँ हम देखते हैं कि श्री भारतानन्द उद्योगों को चलाने के लिए शक्ति की उपलब्धि भी विकेन्द्रित ढंग से करना चाहते हैं। अगर ऐसा संभव हो तो इस विकेन्द्रित एवं विखरे गाँव का काफी भला होगा। परन्तु अव तक के प्रयोगों एवं जानकारी के आधार पर हम कह सकते हैं कि सूक्ष्म ऊर्जा का विकास वहुत ही कम हो पाया है। वैसे गोवर गैस के विकास का प्रयास किया गया है, परन्तु मेरी जानकारी के अनुसार यह गाँव में अभी सफल नहीं हो सका है। फिर यह गैस जलाने के काम तक ही सीमित रही है। हमें स्वीकार करना चाहिए कि यदि गोवर गैस, सूर्य-शक्ति, जल-शक्ति, वायु-शक्ति आदि का विकेन्द्रित ढंग से विकास हो सके तो विकेन्द्रित एवं स्वावलंवी अर्थ-रचना की सफलता एवं सुविधा की संभावना वढ़ जाएगी।

---

१. भारतानन्द, 'सूक्ष्म प्रोद्योगिक तथा सूक्ष्म ऊर्जा-विज्ञान,' खादी ग्रामोद्योग, वम्वई, मई, १९६४, पृष्ठ ५५२।

२. भारतानन्द, वही, पृष्ठ ५५२।

परन्तु यह सब कैसे किया जाए ? क्या ये प्रयास व्यक्तिगत रूप से भी किये जा सकते हैं ? अब तक किये गये प्रयास तो संस्थागत रूप में ही हुए हैं। सरकार द्वारा संचालित खादी ग्रामोद्योग कमीशन, एवं इस प्रकार अन्य संस्थाओं ने इस ओर कुछ प्रयास किये हैं। प्रोफेसर डी० आर० गाडगिल इस बारे में कहते हैं, "मध्यम प्रौद्योगिकी की खोज राष्ट्रीय स्तर पर होनी चाहिए। थोड़े से विशेषज्ञों के ऊपर इतने बड़े कार्य को छोड़ा नहीं जा सकता है। समस्त प्रौद्योगिकीय कार्य से इसका गहरा सम्बन्ध होना चाहिए, योजना के प्रयासों के साथ तो और भी।"[१]

---

१. डी० आर० गाडगिल, वही।

सातवाँ अध्याय

उपसंहार

अब इस अध्ययन का एक बार सारांश प्रस्तुत कर किसी निष्कर्ष पर पहुँचने का प्रयास किया जा सकता है। इस अध्ययन निबन्ध में 'औद्योगीकरण और गांधीजी' का अपने ढंग से अध्ययन करने का प्रयास किया गया।

प्रथम अध्याय में हमने देखा कि गांधीजी औद्योगीकरण के विरोधी नहीं थे। हाँ, मशीनों के लिए पागलपन के विरोधी अवश्य थे। गांधीजी मानते हैं कि भारत की प्राचीन अर्थ-व्यवस्था में उद्योग का प्रमुख स्थान था। अंग्रेजी शासन के आने से वह औद्योगिक व्यवस्था समाप्त हो गयी। इस कारण भारतीय जनता को अपार कष्ट झेलना पड़ा। श्री वैकुण्ठ लाल मेहता इस सम्बन्ध में कहते हैं, "गांधीजी के विचार में ग्रामीण क्षेत्रों की निश्चलता और फलस्वरूप गरीबों की घोर गरीबी के लिए मुख्यतः जिम्मेदार है—ग्रामोद्योग का ह्रास।" गांधीजी प्रायः कहा करते थे कि इससे गाँवों की दोहरी आर्थिक हानि होती है। ग्रामीण लोग विविध पूरक धन्धों तथा सहायक अथवा मुख्य धन्धों में उत्पादन कर, जिसकी गाँवों तथा शहरों दोनों ही जगह माँग थी, जो आय प्राप्त करते थे, वह बन्द हो गयी। अपनी आवश्यकता की पूर्ति के लिए भी उन्हें अपनी गाढ़ी कमाई का पैसा देशी-विदेशी चीजें खरीदने में खर्च करना पड़ता था, जब कि वे उन वस्तुओं का स्वयं ही उत्पादन कर सकते थे और कम पैसे में अपनी आवश्यकता पूरी कर सकते थे।"[1] भारत के प्राचीन उद्योगों के समाप्त होने से ग्रामीण अर्थ-व्यवस्था अस्त-व्यस्त हो गयी। ग्रामीण उद्योगों के समाप्त होने से ही कृषि पर अधिक भार बढ़ा और आज स्थिति यह है कि कुल आबादी का ७५ प्रतिशत भाग कृषि पर निर्भर रहता है। अतः आज की आवश्यकता यह है कि कृषि पर निर्भरता कम की जाय और

---

१. वैकुन्ठ लाल मेहता, आयोजन का गांधीवादी दृष्टिकोण, खादी ग्रामोद्योग, अक्टूबर १९६३।

आवादी को ग्रामीण उद्योगों में लगाया जाय। आज तो बेकारी की भीषण समस्या है। उसे समाप्त करने के लिए भी ग्रामोद्योग की प्रमुख आवश्यकता है।

गांधी जी औद्योगीकरण के विरोधी नहीं थे। उन्होंने कहा है, "मैं औद्योगीकरण करना चाहता हूँ, पर अपने ढंग का। जब हम औद्योगीकरण के सम्बन्ध में गांधी जी के विचारों को देखते हैं तो उनके विचारों में क्रमिक विकास देखने को मिलता है। प्रारम्भ में गांधीजी की मान्यता थी कि मशीन एवं उद्योग को पूर्ण रूप से समाप्त किया जा सकता है या उसका उपयोग नहीं के बराबर किया जा सकता है। परन्तु धीरे-धीरे विचारों में निखार आता गया और १९२४ के बाद वे इस मत के प्रतिपादक हो गये कि मशीनों को समाप्त नहीं किया जा सकता है। हाँ, उनके उपयोग की हद बांधना आवश्यक है। गांधी जी मानते हैं कि औद्योगीकरण जिस रूप में योरप में विकसित हुआ, वह भारत के लिए कदापि उचित नहीं है।

औद्योगीकरण की विचारधारा स्वदेशी और खादी के आर्थिक दर्शन से जुड़ जाती है। गांधी अर्थशास्त्र अपने प्रारम्भिक रूप में खादी के व्यावहारिक पहलू से ही शुरू हुआ था। खादी और स्वदेशी के कार्यक्रम के सिलसिले में ही गांधीजी का अर्थशास्त्र क्रमशः आगे बढ़ा है। गांधीजी मानते हैं कि खादी के माध्यम से एक तो स्वयं वस्त्र के मामले में स्वावलम्बन आता है और दूसरे जो कि आर्थिक दृष्टि से अधिक महत्वपूर्ण है, आंशिक बेकारी दूर करने में वह बहुत सहायक हो सकता है। खादी का कार्यक्रम विकेन्द्रित अर्थ-रचना से जुड़ा हुआ है। कृषि के साथ खादी को जोड़ने से स्वावलम्बन की साधना पूरी होती है। खेती से बचे समय में आसानी से कताई की जा सकती है। इससे स्वयं स्वावलम्बन तो सधेगा ही, साथ में बुनकर एवं अन्य उत्पादकों को भी रोजी मिलेगी।

जहाँ तक स्वदेशी का प्रश्न है, किसी भी देश के लिए लभ्य है। गांधीजी स्वदेशी हर देश एवं काल के लिए उपयोगी मानते हैं। गांधीजी मानते हैं कि स्वदेशी का अर्थशास्त्र पड़ोसी की सेवा से निकला है। हम अपना प्रत्येक कार्य-पड़ोसी की आवश्यकता को देख कर करें। जब हर आदमी पड़ोसी की आवश्यकताओं को देख कर काम करता है तो व्यक्ति का अधिकतम भला होता है। स्वदेशी कोई संकुचित विचारधारा नहीं है। बाद में तो गांधीजी ने स्वदेशी की विचारधारा को इतना आगे बढ़ाया कि उसमें विदेशों से ली जाने वाली आर्थिक एवं तकनीकी सहायता भी शामिल की जा सकती है। लेकिन वे मानते हैं कि विदेशों से तभी सहायता ली जाए जब हम उसे ब्याज सहित चुकाने की स्थिति में हों। फिर स्वदेशी का महत्व इस माने में भी बढ़ जाता है कि हर देश का आर्थिक

विकास देश की परिस्थितियों, साधनों एवं समस्याओं के अनुरूप ही किया जा सकता है। गांधीजी इसी मत के समर्थक हैं।

गांधीजी का विश्वास था कि यदि हमने पश्चिमी सभ्यता एवं उस पर आधारित औद्योगीकरण अपनाया तो हिन्दुस्तान वर्बाद हो जायगा। "हिन्दुस्तान की परिस्थितियाँ, समस्यायें, सभ्यता एवं संस्कृति पश्चिम से सर्वथा भिन्न हैं। अतः यहाँ का अर्थशास्त्र भी भिन्न होगा। यदि हमने पश्चिमी औद्योगीकरण को, पश्चिमी मशीनों को अपनाया तो उसकी सभ्यता भी अपनानी पड़ी। क्योंकि मशीन का, तकनीक एवं उसकी पद्धति का प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से समाज पर प्रभाव पड़ता है। फिर, पश्चिमी तकनीक एवं मशीनों का विकास उसकी अपनी समस्याओं एवं परिस्थिति का परिणाम है। भारत की स्थिति पश्चिम से सर्वथा भिन्न है। अगर भारत में पश्चिम के वड़े एवं केन्द्रित उद्योगों को अपनाया गया तो भारत के विकेन्द्रित गाँवों की वही स्थिति होगी जो समुद्र में एक छोटे से टापू की होती है। थोड़े से इने-गिने औद्योगिक नगरों के चारों ओर गरीवी, असमानता का विशाल समुद्र लहरायेगा और आर्थिक ढाँचा लड़खड़ा जायगा। कुछ लोग, जिन्हें औद्योगीकरण का लाभ मिलेगा, पश्चिमी सभ्यता के रंग में रँग जाएँगे, शेप जनता न तो हिन्दुस्तान की सभ्यता, संस्कृति के अनुसार जी सकेगी और न ही पश्चिमी। हमें यहाँ स्वीकार करना चाहिए कि तकनीक एवं मशीन का समाज पर प्रभाव पड़ता है। अव प्रश्न यह है कि फिर, भारत में तकनीक का क्या स्वरूप होगा? क्या यहाँ मशीन का आधुनिक तकनीक का कोई स्थान नहीं होगा? गांधीजी मानते हैं कि भारत में वही तकनीक एवं मशीन लभ्य है जिसका उपयोग देश के ५ लाख गाँवों की जनता करने में समर्थ हो।

अव यह कहा जा सकता है कि ऐसी स्थिति में वड़े और छोटे उद्योगों की स्थिति क्या होगी? गांधीजी मानते हैं कि भारतीय अर्थ-व्यवस्था विकेन्द्रीकरण पर आधारित होगी। अधिकांश उद्योग गाँवों में विखरे होंगे और ग्रामीण जनता परस्परावलम्बन के ढंग से जीवन व्यतीत करेगी। यहाँ सवाल उठाया जा सकता है कि आखिर सभी उद्योग तो विकेन्द्रित किये नहीं जा सकते हैं? इस पर गांधीजी कहते हैं कि मैं इतना तो समाजवादी हूँ ही कि वड़े उद्योग सरकार के संरक्षण में हों। जो उद्योग विकेन्द्रित ढंग से नहीं चलाया जा सकता है, उसे सरकार को चलाना चाहिए। गांधीजी मानते हैं कि वड़े उद्योगों एवं केन्द्रीकरण से शोषण एवं असमानता वढ़ती है। पश्चिमी देशों में वड़े पैमाने पर केन्द्रित उद्योगों के विकास का मुख्य कारण था कि उसके लिए विश्व का वड़ा क्षेत्र शोषण के लिए उपलव्ध था। वड़े उद्योगों के विकास का मूल कारण असीमित वाजार है। लेकिन आज

की स्थिति में न तो उपनिवेशवाद रहा और न साम्राज्यवाद के विकास की वह स्थिति ही रही जो शुरू में थी। आज तो हर देश यही प्रयास करता है कि वह कम से कम आयात करे एवं अधिक से अधिक निर्यात करे। ऐसी दशा में हमारा औद्योगीकरण इस ढंग का हो कि अपनी आवश्यकताएँ पूरी हों, साथ-ही-साथ पूर्ण रोजगार मिल सके।

यहाँ यह सवाल उठाया जा सकता है कि जब छोटे उद्योग भारत के लिए उपयोगी हैं तो अब तक इन्हें बड़े पैमाने पर क्यों नहीं अपनाया गया ? हमें यहाँ स्वीकार करना चाहिए कि भारतीय नियोजन में या यों कहें भारतीय संविधान में ही गांधीजी द्वारा बताई गयी जीवन-पद्धति के अनुसार नियोजन को अस्वीकार-सा किया गया है। सत्य तो यह है कि भावी भारतीय समाज-रचना का कोई स्पष्ट चित्र सामने नहीं है। भारत को पूरब और पश्चिम के विचारों का खेल का मैदान बना दिया गया है जहाँ पश्चिमी विचारक एवं साम्यवादी विचारक आकर अपना-अपना खेल दिखाते हैं।

फिर भी नाममात्र का या यों कहे परिस्थिति-वश बेरोजारी की समस्या ने औद्योगीकरण में ग्रामोद्योग एवं छोटे उद्योगों को स्थान देना लाजमी कर दिया है। अतः नियोजन-काल में छोटे उद्योगों पर कुछ रकम खर्च की गयी है। यह रकम तीसरी योजना में योजना के कुल व्यय का २.८ प्रतिशत रखी गयी और चतुर्थ योजना में कुल व्यय का २.६ प्रतिशत रखने का विचार है जबकि बड़े संगठित उद्योगों पर क्रमशः २०.३ और २०.५ प्रतिशत है। प्रारम्भ में प्रथम पंचवर्षीय योजना में जिस ढंग से इन उद्योगों पर रकम खर्च की जाती थी, आज उसके स्वरूप में भी कुछ परिवर्तन आया है। लेकिन यह नहीं कहा जा सकता है कि सम्पूर्ण नियोजन में इसका—छोटे उद्योगों का—कोई महत्वपूर्ण स्थान है। तीसरी योजना के मध्यावधि मूल्यांकन के अध्ययन से स्पष्ट है कि तीसरी योजना में इन उद्योगों पर जो व्यय-राशि रखी गयी थी, योजना के तीन वर्षों में केवल ४७ प्रतिशत ही व्यय किया जा सका है। अतः जो राशि व्यय के लिए रखी जाती है, वह भी संगठन एवं योजना के कार्यान्वय के अभाव में पूरा का पूरा व्यय नहीं हो पाती है।

इन उद्योगों पर व्यय-राशि कम होने के साथ-साथ विकास की अन्य समस्यायें भी सामने आती हैं। भारत में छोटे उद्योग एवं ग्रामोद्योग के विकास की अनेक सुविधायें एवं अनुकूल परिस्थितियाँ होते हुए भी वह समुचित ढंग से आगे नहीं बढ़ पा रहा है। इसके विकास की समस्याओं के अध्ययन में यह कहा जाता है कि इस पर व्यय-राशि कम है। पर हमने देखा कि जो राशि है, संगठन एवं

योजना के अभाव में वह भी पूरा-पूरा व्यय नहीं की जाती है। इन उद्योगों के विकास में अन्य बाधायें भी सामने आती हैं।

सबसे बड़ी बाधा यह बताई जाती है कि इन उद्योगों को बड़े एवं केन्द्रित उद्योगों से प्रतिस्पर्धा करनी पड़ती है। फिर यह बिलकुल सत्य है कि जहाँ छोटे उद्योगों को बड़े एवं केन्द्रित उद्योगों से प्रतिस्पर्धा करनी पड़ेगी, छोटे उद्योग इसके सामने नहीं टिक सकेंगे। फिर, इन उद्योगों की एक बड़ी बाधा है, तकनीक एवं उत्पादन-पद्धति का पिछड़ा होना। इन उद्योगों में लगे तकनीक एवं उत्पादन पद्धति—परम्परागत और नये ग्रामोद्योग दोनों में—पिछड़ी और घटिया किस्म की है। इस पिछड़ेपन का प्रत्यक्ष प्रभाव उत्पादन-लागत पर पड़ता है जो कि कीमत, उत्पादन और बाजार को प्रभावित करती है और अंततः उपभोक्ता इससे अरुचि रखने लगता है। एक बड़ी बाधा पूंजी की कमी है जिस कारण इन उद्योगों के उत्पादक नयी तकनीक एवं उत्पादन-पद्धति को अपनाने में असमर्थ होते हैं। पूंजी की तो इतनी कमी है कि उन उद्योगों से किसी तरह अपनी जीविका चला लें इतना ही काफी है। जहाँ पर पूंजी की स्थिति कुछ अच्छी है एवं उन्नत तकनीक का भी कुछ उपयोग किया गया है, वहाँ पर कच्चा माल भी एक सस्मया उत्पन्न करता है। स्थिति यह है कि व्यक्तिगत एवं केन्द्रित ढंग से संचालित बड़े पैमाने के उद्योग कच्चे माल का संग्रह कर लेते हैं। फलस्वरूप इन उद्योगों को कच्चा माल उचित समय एवं उचित कीमत पर नहीं मिल पाता है।

इसके अलावा बाजार की समस्या एवं समाज की गलत व्यवस्था भी विकास की बड़ी बाधा है। परन्तु इतनी सारी बाधाएँ हैं और इन्हें किसी न किसी तरह दूर करने से ही समस्या का हल सम्भव है। इसके लिए इन उद्योगों के संगठन, उत्पादन-पद्धति, व्यवस्था, तकनीक आदि पर गम्भीरता से विचार करना पड़ेगा।

बौद्धिक क्षेत्रों में छोटे-छोटे उद्योगों के विकास की सबसे बड़ी बाधा तकनीक का पिछड़ापन एवं उत्पादन की गलत पद्धति बताई जाती है। बौद्धिक वर्ग का मानना है कि जब तक उन्नत तकनीक नहीं अपनायी जाएगी, तब तक इन उद्योगों का न तो बाजार में टिकना संभव है और न ही इसका बुद्धिजीवी वर्ग द्वारा स्वीकार किया जाना ही संभव है। इस क्षेत्र में पश्चिमी विचारक श्री ई० एफ० शुमाखेर एवं भारत के प्रसिद्ध अर्थशास्त्री प्रोफेसर डी० आर० गाडगिल के विचार पठनीय हैं। इनका मानना है कि ग्रामोद्योग में तकनीकी सुधार करके उत्पादन-क्षमता बढ़ानी होगी। हमें ऐसी तकनीक एवं मशीनों का आविष्कार करना पड़ेगा जो कि इतनी सस्ती और सरल हों कि देश की गरीब जनता खरीद सके और

आसानी से चला सके। परन्तु इन तकनीकों के विकास के लिए उचित प्रशिक्षण एवं आर्थिक सहायता आवश्यक है। अंबर का नया माडल इस क्षेत्र में सराहनीय कदम कहा जा सकता है।

इसी प्रकार खादी और ग्रामोद्योगों के सम्बन्ध में डाक्टर रामकृष्ण राव की अध्यक्षता में नियुक्त कार्यकारी दल का प्रतिवेदन सामने है। दल ने सिफारिश की है कि शहरों में उद्योगों का केन्द्रीकरण रोकने के लिए सरकार को साहसिक कदम उठाने की आवश्यकता है। इस सम्बन्ध में दल ने चन्द सुझाव दिये हैं। दल के अनुसार "तृतीय पंचवर्षीय योजना के अनुसार ग्राम और लघु उद्योगों के लिए कार्यक्रम कार्यान्वित करने में जिस एक प्रमुख उद्देश्य को ध्यान में रखना है, वह है—कौशल में सुधार लाने, प्राविधिक सलाह उन्नत उपकरण और ऋण प्रदान करने, आदि जैसे सहायता के ठोस स्वरूपों पर अपेक्षाकृत अधिक बल देते हुए उत्पादन-खर्च कम करना और कर्मी की उत्पादकता बढ़ाना। अनुपयुक्त और अक्षम उत्पादन के तरीकों के व्यवहार और बाबा-आदम जमाने के तकनीकों से चिपके रहने के फलस्वरूप ग्रामीण औद्योगीकरण में जो गतिहीनता आ गयी है, उसे दूर किया जाना चाहिए। जहाँ हम इस बात पर बल देना चाहेंगे कि रोजगारी और प्रौद्योगिकी के मध्य उपयुक्त सन्तुलन बनाये रखना चाहिए, वहाँ हम तकनीक की दिशा में अवरोध खड़ा करने वाले किसी कदम का भी सुझाव नहीं देंगे। कुछ लोगों की यह गलत धारणा बन गयी है कि ग्राम और लघु उद्योगों में पुरानी तकनीकों को बनाये रखना प्रायः एक पूर्वाग्रह बन गया है जिसके परिणामस्वरूप प्रौद्योगिकी-अभिवृद्धि का प्रस्तरीकरण अथवा अस्वीकरण पैदा हो गया है। अपेक्षाकृत पिछड़ी तकनीकों को चालू रखने का यह औचित्य हो सकता है कि नयी तकनीकों के लागू करने के कुछ सामाजिक दोष ये हैं कि बेरोजगारी पैदा हो सकती है। लेकिन इसके साथ ही हम इस बात पर जोर देना चाहेंगे कि अपेक्षाकृत अविकसित तकनीकों के स्थान पर तुलनात्मक दृष्टि से अच्छी तकनीक शनैः-शनैः करके अथवा क्रमिक रूप से अपनाने की आवश्यकता है। यह बात कर्वे समिति ने भी मानी थी और कहा था, जब नया विनियोजना करना हो तो वह यथासंभव उन्नत उपकरणों पर अथवा प्रचलित उपकरणों में कुछ जोड़ने या अनुकूल करने से सुधार होने की सम्भावना हो तो उनके सुधार द्वारा किया जाना चाहिए। समिति ने यह भी बड़े स्पष्ट शब्दों में कहा था कि, "जहाँ तक कोई सुधार विकेन्द्रित विभाग में व्यापक पैमाने पर अपनाने लायक हो तथा जहाँ तक उसका रोजगार पर कोई बुरा प्रभाव न पड़ता हो, वहाँ तक उसे अपनाने के

सम्बन्ध में सभी एकमत हैं।"[1] अतएव, प्रोफेसर गाडगिल तथा समाजवादी भुवनेश्वर प्रस्ताव के कार्यान्वयन पर भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस की उप-समिति के समान हम भी ग्रामीण उद्योगों में तकनीक के समूचे सवाल के प्रति एक अत्यन्त ही प्राणवान् उपागम अपनाने की सिफारिश करते हैं।"

ग्रामीण औद्योगीकरण के बारे में अध्ययन हेतु अन्तर्राष्ट्रीय प्लानिंग टीम की स्थापना १९५५ में की गयी। इस अध्ययन-दल ने छोटे पैमाने के उद्योगों की समस्याओं का अध्ययन किया था, न कि ग्रामीण औद्योगीकरण के विकसित स्वरूप की। परन्तु इसका प्रभाव भी ग्रामीण औद्योगीकरण पर पड़ा ही है। इस रिपोर्ट में विपणन, ऋण, गुणक योजना पर विस्तार से विचार किया गया है। इस समिति ने मुख्य रूप से उत्पादन और प्रबन्ध के आधुनिकीकरण पर जोर दिया है। रिपोर्ट में कहा गया है कि छोटे उद्योगों का बहुत बड़ा देशी बाजार है। इसके अलावा इस रिपोर्ट में मशीन-विरोधी दृष्टिकोण का जोरदार खंडन किया गया है। इस बात पर बल दिया गया है कि उत्पादन के सस्ते और अधिक कुशल तरीकों से बाजार का विस्तार होगा और इससे दीर्घकाल में कम के बजाय अधिक रोजगार बढ़ेगा। कमेटी ने लघु उद्योगों के शहरीकरण पर जोर नहीं दिया, इसके विपरीत विकेन्द्रीकरण का ही सुझाव दिया है। अंत में इस रिपोर्ट ने बाजार के बढ़ाने की आवश्यकता पर अत्यधिक जोर दिया है।[2]

शायद इससे भी अधिक महत्वपूर्ण रिपोर्ट इस बारे में उसी वर्ष (१९५५) प्रकाशित रिपोर्ट आफ विलेज ऐन्ड स्माल स्केल इंडस्ट्रीज कमेटी (जिसे कर्वे कमेटी भी कहते हैं) की है। इस कमेटी का प्रधान काम दूसरी पंचवर्षीय योजना में इन उद्योगों के लिए धनराशि का सुझाव देना था। कर्वे कमेटी की रिपोर्ट में इस समय तक ग्रामोद्योगों के बारे में जो पक्ष-विपक्ष में तर्क दिये जाते रहे हैं, इस प्रश्न पर जो चिन्तन और अन्तर्विरोध रहा है, उन सबका समावेश हुआ है। इन सब में समन्वय कायम करने के लिए कई एक व्यापक सुझाव इस कमेटी ने दिये जिनके अन्तर्गत प्राय: हर प्रकार का दृष्टिकोण आ जाता है। यह रिपोर्ट औद्योगिक विकेन्द्रीकरण की एक परिपूर्ण व्याख्या है। इसमें 'बेसिक एप्रोच' और

---

१. खादी और ग्रामोद्योगों पर कार्यकारी दल का प्रतिवेदन, भारत सरकार, १९६४, पृष्ठ ८, पैरा २, उद्धृत, सुभाषचन्द्र सरकार, खादी ग्रामोद्योग, अक्टूबर, १९६५, पृष्ठ ६८।

२. कार्ल सी० टेलर, आदि, "डेवलपमेंट आफ रूरल इंडस्ट्रीज", इन्डियाज रूट्स आफ डेमोक्रैसी, ओरियेण्ट लांग मेंस, नई दिल्ली, १९६५, पृष्ठ ३७०।

'प्रिंसिपल एन्ड पालिसीज' शीर्षक दो अध्यायों में तीन क्षेत्रों में सुझाव देने की बात की गयी है : (१) वर्तमान उद्योगों में ही बढ़ती हुई बेकारी या अर्धबेकारी को रोकने के उपाय, (२) बढ़ते हुए रोजगार के अवसरों का प्रबन्ध, (३) भविष्य के प्रधान रूप से विकेन्द्रित औद्योगिक समाज-रचना के आधार प्रस्तुत करना जिससे कि आर्थिक विकास और अधिक तेज दर पर संभव हो सके। रिपोर्ट में तकनीकी बेकारी पर चिन्ता व्यक्त की गयी है। रिपोर्ट के अनुसार, "जिसे तकनीकी बेकारी कहा जाता है, उससे बचना हमारा प्रस्थान-बिन्दु है।"[1] और इस रिपोर्ट ने इस बात पर बल दिया कि उत्पादन के और ज्यादा आधुनिक तरीके इस समस्या को और बढ़ा देंगे। समिति की राय में, "भारत की विशिष्ट परिस्थिति में आधुनिक टेकनालाजी के इस्तेमाल से जो बेकारी फैलेगी, उसे कहीं खपा सकना संभव नहीं है।"[2] कमेटी ने इस बात पर भी जोर दिया कि दूसरी योजना के काल में उपभोक्ता उद्योगों की बढ़ती हुई पूर्ति ग्रामोद्योग और छोटे पैमाने के उद्योगों से की जाय और इस तरह बेकारी, अर्ध-बेकारी की समस्या को और अधिक जटिल बनाने से रोका जाय।[3]

यहाँ यह याद रहे कि दूसरी पंचवर्षीय योजना की विचारधारा, इस कमेटी की विचारधारा से भिन्न है। दूसरी योजना में विकास की जो नीति अपनाई गई है, उसके अनुसार भारी उद्योग औद्योगीकरण के लिए आधारभूत हैं। भारी उद्योगों की स्थापना से तो निश्चित रूप से केन्द्रीकरण और तकनीकी बेकारी बढ़ती है, ऐसी बेकारी जिसे किसी दूसरे क्षेत्र में काम में नहीं लगाया जा सकता। किन्तु ऐसा लगता है, जैसे दूसरी योजना के सामने बड़ी समस्या बेकारी नहीं, बड़े पैमाने का औद्योगीकरण हो, जब कि कमेटी की प्रधान चिन्ता बेरोजगारी है। इसके अलावा कमेटी की जो खास बात है, वह यह है कि इसमें एक विकेन्द्रित औद्योगीकरण की व्याख्या है जो कि पंचवर्षीय योजना की कार्य-नीति से मेल नहीं खाती है।[4] इसलिए उन दिनों इस कमेटी की रिपोर्ट को प्रगति-विरोधी प्रतिगामी समझा गया और योजना में एक प्रतीक रकम ग्रामोद्योगों एवं छोटे उद्योगों पर निर्धारित कर जैसे छुट्टी पा ली गयी।

डाक्टर केदारनाथ प्रसाद भारत में छोटे उद्योगों के पक्ष को प्रस्तुत करते समय दो दृष्टिकोणों से इसके महत्व की विवेचना करते हैं: (१) रोजगार की दृष्टि

---

१. कार्ल सी० टेलर, आदि "डेवलपमेंट आफ रूरल इंडस्ट्रीज", इन्डिया रूट्स आफ डेमोक्रेसी, ओरियेण्ट लांग मेंस, नई दिल्ली, १९६५, पृष्ठ ३७०।

२. वही।

३. वही।

४. पहले उद्धृत, ३७२।

से, (२) राष्ट्रीय आय की प्राप्ति की दृष्टि से। उनके अनुसार, "भारत में बड़े पैमाने के उद्योगों की अपेक्षा छोटे पैमाने के उद्योगों का महत्व अधिक बना रहने वाला है। यह महत्व रोजगार और राष्ट्रीय आय की प्राप्ति की दृष्टि से और भी अधिक महत्वपूर्ण हो जाता है।"[1] डा० केदारनाथ प्रसाद छोटे उद्योगों के विस्तृत अध्ययन के बाद ऐसा समझते हैं कि छोटे उद्योग बड़े उद्योगों के साथ-साथ चल सकते हैं। उनके अनुसार छोटे उद्योगों को सहकारी समितियों के माध्यम से चलाया जा सकता है।[2]

परन्तु यहाँ यह भी विचार स्पष्ट है कि एक उद्योग में बड़े पैमाने एवं छोटे पैमाने दोनों ढङ्ग से उत्पादन किया जाता है तो प्रतियोगिता में छोटे उद्योग कभी नहीं टिकते हैं। इस बारे में श्री धीरेन्द्र मजूमदार ने ठीक ही कहा है कि "दोनों साथ चल ही नहीं सकता।" यह पिछले अनुभव से भी स्पष्ट है कि अनेक प्रकार की सहायता देने के बाद भी खादी या अन्य छोटे उद्योग बड़े पैमाने के उत्पादन की स्पर्धा में नहीं चल पा रहे हैं।

ग्रामोद्योग के पक्ष में तर्क देते हुए श्री भारतभूषण लिखते हैं, "जिन आधारों पर लोग ग्रामीण उद्योगों के विकास, कार्यक्रम का समर्थन करते हैं, उन्हें संक्षेप में इस प्रकार रखा जा सकता है:—

१. रोजगार की दृष्टि से देखने पर वे पूर्ण अथवा अल्प समय का रोजगार और चन्द परिस्थितियों में आर्थिक दृष्टि से संकट में पड़े लोगों को राहत प्रदान करते हैं।

२. उत्पादन के विचार से वे बड़े उद्योगों के उत्पादन के पूरक हैं और इस प्रकार उपभोग्या सामानों तथा लघु उत्पादकों की वस्तुओं की पूर्ति में वृद्धि करते हैं।

३. वे सम्भवतः अल्प विकसित देशों में अत्यन्त दुर्लभ स्रोत (पूंजी) का लाभदायक स्वरूप से उपयोग करने में सहायता प्रदान करते हैं।

४. सृजनात्मक प्रवृत्ति की अभिव्यक्ति में सुविधा प्रदान करने और स्वतन्त्र कारीगरों तथा लघु उद्योग की परम्परा को कायम रखने तथा मजबूत बनाने के लिए उनका उपयोगी स्थान है।[3]

---

१. डा० केदारनाथ प्रसाद, टेकनिकल च्वायस, पापुलर प्रकाशन बम्बई, १९६३, पृष्ठ १३।

२. वही, पृष्ठ २७०।

३. भारतभूषण "ग्रामीण औद्योगीकरण के लाभ", खादी ग्रामोद्योग, खादी कमीशन बम्बई, फरवरी १९६४, पृष्ठ ३५५।

भुवनेश्वर कांग्रेस में स्थापित ढेवर कमेटी के अनुसार "ग्रामीण औद्योगीकरण को देश के आर्थिक विकास के आयोजन के एक प्रमुख आर्थिक और सामाजिक उद्देश्य के रूप में स्वीकार किया जा चुका है। जैसा कि प्रोफेसर डी० आर० गाडगिल ने कहा है कि ग्रामीण औद्योगीकरण के ध्येय में देश का एक ऐसा औद्योगीकरण निहित है जो कि व्यापक रूप से फैला हुआ और छोटे पैमाने पर होना चाहिये और उसकी आर्थिक सामर्थ्य विकास की प्रक्रियाओं की आवश्यकताओं तथा सूक्ष्म तकनीकों के अनुरूप होनी चाहिए। इसके अर्थ हैं, गाँव में उपलब्ध जनशक्ति तथा कृषि-सम्बन्धी और अन्य प्रकार के कच्चे माल के साधनों का समुचित उपयोग और साथ ही गाँवों में प्रोसेसिंग तथा उपभोक्ता वस्तुओं के उद्योगों का अधिकतम सोद्देश्य विकास।"[1]

सामुदायिक एवं सहकारिता मंत्रालय ने १९५९ में एक अध्ययन दल की नियुक्ति "पायलट प्रोजेक्टों" के विकास के सिलसिले में की थी। उक्त दल ने अपनी रिपोर्ट में कहा था कि "पूर्वचालित प्रोजेक्टों से यह अनुभव हुआ कि ग्रामीण औद्योगीकरण को अलग से नहीं किया जा सकता और न इस बारे में इस प्रकार सोचना ही ठीक होगा, बल्कि इसे ग्रामों के उस बहुमुखी विकास का एक अंग होना चाहिए जिसमें कृषि, सहकारिता, सिंचाई, यातायात, शिक्षा आदि का भी साथ-साथ विकास हो।"[2]

आज शहरों एवं गाँवों में आर्थिक एवं सामाजिक दोनों प्रकार की असमानता बढ़ रही है। लोग गाँव से शहरों की ओर अग्रसर हो रहे हैं। "इस असंतुलन का का उन्मूलन, मात्र आर्थिक न होकर एक सामाजिक आवश्यकता भी है और ऐसा केवल ग्रामीण औद्योगीकरण के माध्यम से ही किया जा सकता है।"[3] अतः हमें यहाँ स्वीकार करना चाहिए कि ग्रामीण औद्योगीकरण न सिर्फ आर्थिक बल्कि सामाजिक आवश्यकता भी है। ग्रामीण उद्योगीकरण के समर्थन में श्री त्रिभुवन नारायण सिंह कहते हैं, "ग्रामीण उद्योग कार्यक्रम का उद्देश्य ग्राम्य क्षेत्रों में लोगों को काफी तादाद में पूर्ण रोजगार प्रदान करना और इस प्रकार हमारे लाखों,

---

१. भारत भूषण "ग्रामीण औद्योगीकरण के लाभ", खादी ग्रामोद्योग, खादी कमीशन, बम्बई, फरवरी १९६४, पृष्ठ ३५५।

२. विष्णु मोहन पाण्डेय, "ग्रामीण औद्योगीकरण के कुछ पहलू" आर्थिकी, दिसम्बर १९६४, पृष्ठ ६३।

३. अरुण चन्द्र गुहा, खादी ग्रामोद्योग, अक्टूबर १९६४।

करोड़ों ग्रामवासियों का जीवन सार्थक बनाना तथा फलस्वरूप उन्नत उत्पादन तकनीकें अपना कर मानव एवं सामग्री के रूप में उपलब्ध साधन-स्रोतों का अधिक लाभदायक रूप में उपयोग करना है।"[1]

ग्रामोद्योग के बारे में भारत के विचारकों के अलावा पश्चिमी विचारकों ने भी कमो-बेश विचार किया है। पश्चिम के कुछ विचारकों ने तो छोटे उद्योगों का समर्थन किया है। लेकिन कुछ ने इसे अनार्थिक कह कर इसकी आलोचना की है। भारतीय विचारधारा से सम्बन्ध रखने वाले विचारक, रिचर्ड बी० ग्रेग ने गांधी अर्थ-रचना का पूरा-पूरा समर्थन किया है। उन्होंने अपनी पुस्तक "फिलासफी आफ इण्डियन इकनामिक डेवलपमेंट", में छोटे पैमाने की एवं विकेन्द्रित अर्थ-रचना को अनेक ढङ्ग से पुष्ट करने का प्रयास किया है।

इसके विपरीत, अम्बर चर्खा के बारे में श्री ए० एस० भल्ला कहते हैं कि यह मिल के कपड़े के साथ आर्थिक दृष्टि से नहीं टिक सकता और न ही यह आर्थिक दृष्टि से लाभदायक ही है। उन्होंने आँकड़ों से यह सिद्ध करने का प्रयास किया है कि किस प्रकार अम्बर चर्खा अनार्थिक है।[2] लेकिन यहाँ उन्होंने अम्बर चर्खा के अर्थशास्त्र की, विकेन्द्रीकरण के आर्थिक दर्शन की पूरी तौर पर उपेक्षा की है, उसका विचार ही नहीं किया है। जब कि अम्बर चर्खे के साथ उसका एक अलग अर्थशास्त्र—विकेन्द्रीकरण का जुड़ा हुआ है। इसी प्रकार फिलिप जेवर्ड ने अपने लेख "कमेंट आन खादी"[3] में खादी को एक पिछड़ी एवं अवैज्ञानिक तकनीक कह कर इसकी आलोचना की है और आधुनिक विकसित अर्थव्यवस्था में इसकी अनुपयोगिता का तर्क दिया है। इस लेख का उत्तर आचार्य जे० बी० कृपलानी ने "ए रिप्लाई टु कमेंट आन खादी"[4] शीर्षक से दिया। श्री कृपलानी ने खादी के आर्थिक दर्शन के पक्ष को बताया है और कहा है कि खादी की न तो मिल के कपड़े से "पैसे" की दृष्टि से तुलना की जा सकती है और न ही इसे मात्र "व्यापारिक"

---

१. टी० एन० सिंह, "ग्रामोद्योगों के लिए प्रौद्योगिकी" खादी ग्रामोद्योग, अक्टूबर १९६३।

२. ए० एस० भल्ला, "ए केस आफ कॉटन स्पीनिंग", द इकनामिक जनरल, सितम्बर, १९६४।

३. फिलिप जेवर्ड, "कमेण्ट आन खादी", गांधी मार्ग (अंग्रेजी), जुलाई, १९५८।

४. आचार्य जे० बी० कृपलानी, "ए रिप्लाई टू कमेण्ट आन खादी", गांधी मार्ग, (अंग्रेजी) अक्टूबर, १९५८।

ढङ्ग से चलाने की बात की जा सकती है। इसका अपना जीवन-दर्शन है, जिसका आधार अहिंसक समाज-रचना है और इसे उसी "पूरा जीवन दर्शन" के रूप में ही समझना चाहिए।

छोटे उद्योगों के सम्बन्ध में श्री धर और लिडल ने अध्ययन से बताया कि छोटे उद्योगों को स्वावलम्बी बना कर ही चलाया जा सकता है। इन्होंने छोटे उद्योगों के पक्ष में चार तर्क दिये हैं : (१) रोजगार देने की क्षमता। (२) विकेन्द्रीकरण; यह विकेन्द्रीकरण भी दो रूपों में चल सकता है : (क) बड़े उद्योगों के पूरक के रूप में, (ख) स्वतन्त्र बाजार के रूप में। (३) राजनैतिक और सामाजिक। (४) बड़े पैमाने के साहसियों की कमी।[1] इन तर्कों की व्याख्या के बाद उनका कहना है कि यदि छोटी-छोटी फर्मों की स्थापना की जाए तो छोटे उद्योग "स्वसंचालन" की स्थिति आसानी से पा सकते हैं। इसके साथ ही साथ वे "औद्योगिक बस्तियों की स्थापना की भी बात करते हैं।" अंततः वे मानते हैं, "इस अध्ययन से मुख्य निष्कर्ष यह निकलता है कि छोटी-छोटी फर्मों में अपने पैरों पर विकसित करने की क्षमता होनी चाहिए।"[2]

लेकिन छोटे उद्योगों का विकास तो तभी हो सकता है जबकि उसके लिए "संपूर्ण दृष्टि" को ध्यान में रखा जाय। इन उद्योगों का विकास राज्य के नियोजन के दृष्टि में परिवर्तन किये बिना सम्भव नहीं है। श्री सुभाष चन्द्र सरकार कहते हैं, "इन सबके लिए सबसे बड़ी बात मेरी दृष्टि से यह है कि पूरी "दृष्टि" में परिवर्तन होना चाहिए। यहाँ सवाल बड़े और छोटे पैमाने के उद्योगों के बारे में "नीति-निर्धारण" का है। राज्य-स्तर पर नीति एवं स्वरूप को स्पष्ट रूप से तय किया जाय।"[3]

अन्त में, प्रोफेसर जे० सी० कुमारप्पा के इस उद्धरण के साथ ही अध्ययन समाप्त करना चाहेंगे, "अक्सर यह सवाल पूछा जाता है कि क्या इस यांत्रिक युग में ग्रामोद्योग टिक सकते हैं? यहाँ इतना स्पष्ट कर देना ठीक होगा कि ग्राम उद्योग केवल उत्पादन के एक तरीके के द्योतक नहीं हैं, वे एक खास अर्थ-व्यवस्था के द्योतक हैं और उसके अविभाज्य अंग हैं, ठीक उसी प्रकार, जिस प्रकार

---

१. धर एण्ड लिडल, रोल आफ स्माल इन्टरप्राइजेज इन इण्डियन इकनामिक डेवलपमेंट, एशिया पब्लिशिंग हाउस, नई दिल्ली, १९६१, पृष्ठ ११।

२. वही, पृष्ठ ८७।

३. सुभाष चन्द्र सरकार, "रूरल इन्डस्ट्रलाइजेशन" मेक्स् नो हेडवे, कामर्स, ऐनुअल, नम्बर-दिसम्बर १९६५, पृ० ९७।

केन्द्रित उत्पादन एक दूसरी अर्थ-व्यवस्था का द्योतक तथा उसका अविभाज्य अंग है। इसलिए ऊपर के प्रश्न का सच्चा स्वरूप यह होगा कि हम किस व्यवस्था को अच्छी समझते हैं। अपने ध्येय के अनुसार हम व्यवस्था पसंद करेंगे और अपने जीवन में मूल्यांकन की कौन-सी पद्धति हम स्वीकार करते हैं, इस पर हमारा ध्येय अवलम्बित रहेगा। सारांश, मूल्य और मूल्यांकन की पद्धति, ये सामाजिक प्रगति रूपी गाड़ी के दो घोड़े हैं। मनुष्य को अहिंसा या शाश्वतता की ओर जाना है या हिंसा या क्षण-भंगुरता की ओर ले जाना है, इन घोड़ों के ऊपर अवलम्बित है। इसलिए इन दोनों के चुनाव के बारे में हमें बहुत सतर्क रहना चाहिए। इनके चुनाव में कहीं ढील या लापरवाही हुई, तो सर्वनाश निश्चित ही समझिये।"[१]

---

१. जे० सी० कुमारप्पा, स्थायी समाज व्यवस्था, सर्व-सेवा संघ प्रकाशन, काशी, तीसरी बार, १९६०, पृ० ६२।

सहायक सामग्री की सूची

१. गांधीजी, ग्रामस्वराज्य, संपादक, हरिप्रसाद व्यास, नवजीवन प्रकाशन मंदिर, अहमदाबाद, १९६३।

२. गांधीजी, आर्थिक और औद्योगिक जीवन, भाग १, संपादक वी० वी० खेर, नवजीवन प्रकाशन, अहमदाबाद, १९६१।

३. गांधीजी, मेरे सपनों का भारत, नवजीवन प्रकाशन, अहमदाबाद, दूसरी वार, १९६०।

४. गांधीजी, खादी : क्यों और कैसे ? नवजीवन प्रकाशन मंदिर, अहमदाबाद, दूसरी वार, १९५७।

५. गांधीजी, स्वदेशी और ग्रामोद्योग।

६. श्री जे० सी० कुमारप्पा—स्थायी समाज व्यवस्था, सर्व सेवा संघ प्रकाशन, काशी, चतुर्थ संस्करण, १९६०।

७. श्री जे० सी० कुमारप्पा—गांव आन्दोलन क्यों ? सर्व सेवा संघ प्रकाशन-काशी, चतुर्थ संस्करण १९६०।

८. श्री भारतन कुमारप्पा—पूंजीवाद, समाजवाद : ग्रामोद्योग, ज्ञान मण्डल पुस्तक भंडार, काशी १९६४।

९. श्री अरुण चन्द्र गुहा—"ग्रामीण उद्योगीकरण और ग्रामीण शिक्षित युवक", खादी ग्रामोद्योग, अक्टूबर १९६४।

१०. ग्रामीण समाज के कमजोर वर्गों के कल्याण सम्बन्धी अध्ययन दल की रिपोर्ट—"ग्रामोद्योगों पर समकालीन विचार विमर्श", खादी ग्रामोद्योग, दिसम्बर १९६१।

११. श्री जान केनेथ गालब्रेथ—"भारत में प्रतिद्वन्दी अर्थ सिद्धान्त, खादी ग्रामोद्योग, अप्रैल १९५९।

१२. श्री ति० ल० विजयराघवन—"ग्रामीण उद्योगीकरण", खादी ग्रामोद्योग, अक्टूबर १९६४।

१३. श्री धीरेन्द्र मजूमदार—समग्र ग्राम सेवा की ओर (तीन खण्डों में), सर्व सेवा संघ प्रकाशन, काशी, १९६० ।

१४. श्री प्यारे लाल—आधुनिक जगत् में गांधीजी की कार्य-पद्धतियां, नवजीवन प्रकाशन, अहमदाबाद, १९६१ ।

१५. श्री ब्रह्मदेव मुकर्जी—"ग्राम्य उद्योगीकरण और वित्तीय व्यवस्था", खादी ग्रामोद्योग, अक्टूबर १९६४ ।

१६. श्री वैकुण्ठ लाल मेहता—"गांधी दर्शन : एक पुनर्मूल्यांकन", खादी ग्रामोद्योग, नवम्बर १९६४ ।

१७. श्री वैकुण्ठ लाल मेहता—"ग्रामीण उद्योगीकरण में समस्यायें", खादी ग्रामोद्योग, मई १९६४ ।

१८. श्री भारत भूषण खंसाल—"ग्रामीण उद्योगीकरण के लाभ", खादी ग्रामोद्योग, फरवरी १९६४ ।

१९. श्री दूधनाथ चतुर्वेदी—गांधीजी का आर्थिक दर्शन, काशी विद्यापीठ, वाराणसी, १९६५ ।

२०. श्री भारतानन्द—"सूदन प्रौद्योगिकी तथा सूक्ष्म उर्जा विज्ञान", खादी ग्रामोद्योग, मई १९६४ ।

२१. श्री मन्जेशकर सदाशिव राय—"मध्यम प्रौद्योगिकी की खोज, "खादी ग्रामोद्योग, अक्टूबर १९६४ ।

२२. श्री मनोरञ्जन गुहा—ग्रामीण उद्योगीकरण के नीति-विषयक निहितार्थ, खादी ग्रामोद्योग, अक्टूबर १९६४ ।

२३. प्रथम पंचवर्षीय योजना का प्रारूप—भारत सरकार, नयी दिल्ली १९६२ ।

२४. तीसरी पंचवर्षीय योजना—भारत सरकार, नयी दिल्ली, मई १९६२ ।

२५. श्री क्षितिमोहन मुकर्जी—"पंचवर्षीय योजनायें और लघु उद्योग, खादी ग्रामोद्योग, अक्टूबर १९६४ ।

२६. श्री साइमन वील—"अपना काम और तकनीकल अनुसंधान", खादी ग्रामोद्योग, नवम्बर, १९६४ ।

२७. श्री नवल भाई शाह—"खादी का भविष्य", खादी ग्रामोद्योग, नवम्बर, १९६४ ।

२८. श्री ललित कुमार मित्र—"विकेन्द्रीकरण और ग्रामोद्योग", खादी ग्रामोद्योग,

२९. श्री पु० वि० श्रीकण्ठराव—"ग्रामीण उद्योगीकरण और ग्राम विकास", खादी ग्रामोद्योग, फरवरी १९६६।
३०. गोपाल कारकल—"खादी ग्रामोद्योगों का विकास", खादी ग्रामोद्योग, फरवरी १९६६।
३१. श्री जयप्रकाश नारायण—"ग्रामीण उद्योगीकरण कार्यक्रम का भविष्य," खादी ग्रामोद्योग, जनवरी १९६६।
३२. श्री उ० न० ढेवर—"ग्रामीण उद्योगीकरण : अविरोध वादी के समीकरण का एकमात्र मार्ग—खादी ग्रामोद्योग, जनवरी १९६६।
३३. श्री उ० न० ढेवर—"ग्रामोद्योगों के प्रति आर्थिक दृष्टिकोण", खादी ग्रामोद्योग, दिसम्बर १९६५।
34. F. A. Ryan—*Efficiency for in Small Manufacturers*, Asia Publishing House, Bombay, 1962.
35. G. Balkrishna—*Financing Small Scale Industries in India*, Asia Publishing House, Bombay, 1961.
36. Joseph E. Stepanek—*Small Indusrty Advisory Service*, Asia Publishing House, Bombay, 1962.
37. S. K. Bose—*Place and Problems of Small Scale Industry in India*, A. Mukherji Publishing, Calcutta, 1956.
38. K T. Ramkrishna—*Finances for Small Scale Industry in India*, Asia Publishing House, Bombay, 1962.
39. Kedar Nath Prasad—*Technological Choice Under Developmental Planning* (A Case Study of Small Industries of India), Popular Prakashan, Bombay, 1963.
40. A. S. Bhalla—"*Investment Allocation and Technological Choice*". *The Economic Journal*, September, 1964, pp. 611–922.
41. Philip Zeaby—"Comments on Khadi," *Gandhi Marg*, July 1958.
42. J. B. Kripalani—"A Reply to Comments on Khadi", *Gandhi Marg*, October 1958.
43. D. P. Mukerji—"*Mahatma Gandhi's Views on*

Machines and Technology", in *Diversities*, Peoples Publshing House, 1948, pp. 205–227.

44. D. R. Gadgil—"Notes on Rural Industrialization" *Arth Vijnan*, March 1964.

45. E. F. Schumacher—*Roots of Economic Growth*, Sarva Seva Sangh Prakashan. Kashi 1962.

46. Gandhi Ji—*Economic and Industrial Life and Relation* Volumes II, III, Navajivan Publishing House, Ahmedabad, 1957.

47. G. C. Mandal—*Studies in the Problem of Growth of Rural Economy*, Calcutta, 1961.

48. J. R. Soman—*Peaceful Industrial Relations. Their Science and Technique*, Navajivan Publishing House, 1957.

49. P. N. Dhar and H. F. Lydall—*The Role of Small Enterprises in Indian Eoonomic Development*, Asia Publishing House Bombay, 1961.

50. *The Third Plan Mid Term Appraisal*—Govt. of India, 1964.

51. *Memorandum on the Fourth Plan*—Govt. of India, October 1964.

52. Carl G. Taylor etc—"Development of Rural Industries" pp. 361-399, *India's Roots of Democracy*, Orient Longmans, New Delhi, 1965.
